तत्त्वार्थसूत्र

अनुक्रमणिका

1-जीवाधिकार

01-01) मोक्ष का उपाय
01-01) सम्यग्दर्शन का लक्षण
01-03) उत्पत्ति के आधार पर सम्यग्दर्शन के भेद
01-03) सात तत्त्व
01-05) निक्षेपों का कथन
01-05) तत्त्वों को जानने का उपाय
01-07) तत्त्वों को जानने का अन्य उपाय
01-07) जीव आदि को जानने के और भी उपाय
01-09) ज्ञान के भेद
01-09) ज्ञान ही प्रमाण है
01-11) परोक्ष प्रमाण
01-11) प्रत्यक्ष प्रमाण ज्ञान
01-13) परोक्ष प्रमाण के संबंध में विशेष कथन
01-13) मतिज्ञान किससे उत्पन्न होता है
01-15) मतिज्ञान के भेद
01-15) अवग्रह आदि ज्ञानों के और भेद
01-17) बहु बहुविध आदि किसके विशेषण हैं
01-17) अवग्रह आदि ज्ञान का नियम
01-19) व्यंजनावग्रह सभी इन्द्रियों से नही होता
01-19) श्रुतज्ञान का स्वरूप
01-21) अवधिज्ञान के भेद
01-21) अवधिज्ञान के स्वामी
01-23) मनःपर्यय के भेद
01-23) मनःपर्यय के दोनो भेदों में विशेषता
01-25) अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान में अन्तर
01-25) मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का विषय
01-27) अवधिज्ञान का विषय
01-27) मनःपर्यय ज्ञान का विषय
01-29) केवल ज्ञान का विषय
01-29) एक साथ कितने ज्ञान संभव?
01-31) कौन-कौन से ज्ञान मिथ्या भी होते हैं?
01-31) मिथ्यादृष्टि का ज्ञान मिथ्या क्यों?
01-33) नय के भेद

2-जीवाधिकार

02-01) जीव के परिणामों (भावों) के प्रकार
02-02) परिणामों (भावों) के उत्तर-भेद
02-02) औपशमिकभाव के भेद
02-04) क्षायिकभाव के भेद
02-04) क्षायोपशमिक भाव के भेद
02-06) औदयिक भाव के भेद
02-06) पारिणामिक भाव के भेद
02-08) जीव का लक्षण
02-08) उपयोग के भेद
02-10) जीव के भेद

02-10) संसारी जीवों के भेद
02-12) संसारी जीवों के और भी भेद
02-12) स्थावर जीवों के भेद
02-14) त्रस जीवों के भेद
02-14) इन्द्रियों की संख्या
02-16) इन्द्रियों के प्रकार
02-16) द्रव्य-इन्द्रियों का स्वरूप
02-18) भाव-इन्द्रियों का स्वरूप
02-18) इन्द्रियों के प्रकार
02-20) इन्द्रियों के विषय
02-20) मन के विषय
02-22) स्पर्शन इन्द्रिय के स्वामी
02-22) शेष इन्द्रियों के स्वामी
02-24) संज्ञी जीव का स्वरूप
02-24) विग्रह गति में योग
02-26) विग्रह गति में गमन
02-26) मुक्त जीव का गमन
02-28) विग्रह गति का काल
02-28) ऋजु-गति का काल
02-30) विग्रह-गति में अनाहारक
02-30) जन्म के प्रकार
02-32) जन्म-योनि के प्रकार
02-32) गर्भ-जन्म के स्वामी
02-34) उपपाद-जन्म के स्वामी
02-34) सम्मूर्छन-जन्म के स्वामी
02-36) शरीर के प्रकार
02-36) शरीरों में स्थूलता-सूक्ष्मता
02-38) शरीरों के प्रदेश
02-38) तैजस-कार्मण शरीरों के प्रदेश
02-40) तैजस-कार्मण शरीरों में सूक्ष्मता
02-40) तैजस-कार्मण का जीव के साथ सम्बन्ध
02-42) दोनों शरीरों के स्वामी
02-42) एक जीव के कितने शरीर सम्भव हैं?
02-44) कार्मण शरीर के बारे में विशेष
02-44) गर्भज और सम्मूर्छनज का शरीर
02-46) उपपाद जन्म के साथ शरीर
02-46) वैक्रियक शरीर के अन्य स्वामी
02-48) तैजस शरीर की विशेषता
02-48) आहारक शरीर का स्वरूप
02-50) नारक और संमूर्च्छिन में लिंग
02-50) देवों में लिंग
02-52) मनुष्य-तिर्यन्चों में लिंग
02-52) आयु का अनपवर्तन सम्बन्धी नियम

3-जीवाधिकार

03-01) सात पृथ्वियां
03-01) सात पृथ्वियों में नरकों की संख्या
03-03) नारकीयों की लेश्यादि दुःख
03-03) पारस्परिक दुःख
03-05) देव-कृत दुःख
03-05) नरकों में उत्कृष्ट आयु
03-07) मध्य-लोक में द्वीप समुद्र
03-07) द्वीप -समुद्र का आकार

03-09) जम्बू-द्वीप
03-09) सात क्षेत्र
03-11) छह पर्वत
03-11) पर्वतों के रंग
03-13) पर्वतों का आकार
03-13) पर्वतों पर तालाब
03-15) तालाब की लम्बाई-चौड़ाई
03-15) तालाब की गहराई
03-17) तालाब के बीच में कमल
03-17) बाकी तालाबों के आकार
03-19) तालाबों में देवियों का निवास
03-19) क्षेत्रों की नदियाँ
03-21) नदियों की दिशा
03-21) तीसरी नदी की दिशा
03-23) परिवार नदियाँ
03-23) भरत क्षेत्र का विस्तार
03-25) बाकी क्षेत्रों का विस्तार
03-25) उत्तर-दक्षिण में समानता
03-27) भरत-एरावत क्षेत्र में काल परिवर्तन
03-27) बाकी क्षेत्रों में काल परिवर्तन
03-29) मनुष्यों की आयु
03-29) उत्तर-दक्षिण में आयु में समानता
03-31) विदेह क्षेत्र में आयु
03-31) भरत क्षेत्र का विस्तार
03-33) धातकीखण्ड में क्षेत्र तथा पर्वत
03-33) पुष्करार्द्ध द्वीप में क्षेत्र और पर्वत
03-35) मनुष्यों का गमन
03-35) मनुष्यों के प्रकार
03-37) कर्म-भूमि
03-37) मनुष्यों की उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति
03-39) तिर्यंचों की स्थिति

4-जीवाधिकार

04-01) देवों के प्रकार
04-02) भवनत्रिक-देवों में लेश्या
04-02) देवों के उत्तर भेद
04-04) दस भेद
04-04) भेदों में अपवाद
04-06) भवनावासी और व्यंतर में इंद्र
04-06) काय-प्रविचार कहाँ तक?
04-08) स्पर्श, रूप और शब्द प्रविचार
04-08) प्रविचार रहित देव
04-10) भवनवासी देवों के प्रकार
04-10) व्यन्तर देवों के प्रकार
04-12) ज्योतिषी देवों के प्रकार
04-12) ज्योतिषी देवों में गति
04-14) ज्योतिषी-विमान द्वारा काल-की गणना
04-14) ज्योतिष्क देव में स्थिरता
04-16) वैमानिक देवों का वर्णन
04-16) वैमानिक देवों के प्रकार
04-18) कल्पादि का स्थान-क्रम
04-18) स्वर्गों के नाम
04-20) ऊपर के देवों में वृद्धि

04-20) ऊपर के देवों में हीनता
04-22) वैमानिक देवों में लेश्या
04-22) कल्पवासी देव
04-24) लौकांतिक देव
04-24) लौकांतिक देवों के भेद
04-26) दो भवधारी देव
04-26) तिर्यंच-योनी
04-28) भवनवासी देवों में उत्कृष्ट आयु
04-28) सौधर्म-ऐशान स्वर्गों में उत्कृष्ट आयु
04-30) सानत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्गों में उत्कृष्ट आयु
04-30) १४वें स्वर्ग तक देवों की उत्कृष्ट आयु
04-32) कल्पातीत देवों में उत्कृष्ट आयु
04-32) सौधर्म-ऐशान में जघन्य आयु
04-34) स्वर्ग युगलों में आयु सम्बंधित नियम
04-34) नरकों में आयु सम्बंधित नियम
04-36) प्रथम नरक में जघन्य आयु
04-36) भवनवासी देवों की जघन्य आयु
04-38) व्यन्तर देवों की जघन्य आयु
04-38) व्यन्तर-देवों की उत्कृष्ट आयु
04-40) ज्योतिष्क देवों की उत्कृष्ट आयु
04-40) ज्योतिष्क देवों में जघन्य आयु
04-42) लौकांतिक देवों की आयु

5-अजीवाधिकार

05-01) अजीव के भेद
05-02) इनकी संज्ञा
05-02) जीव भी द्रव्य
05-04) द्रव्यों के बारे में विशेष
05-04) रूपी द्रव्य
05-06) द्रव्यों में संख्या
05-06) क्रिया
05-08) प्रदेश
05-08) आकाश के प्रदेश
05-10) पुद्गल के प्रदेश
05-10) परमाणु के प्रदेश
05-12) आधार
05-12) उदाहरण
05-14) पुद्गलों का अवगाह
05-14) जीवों का अवगाह
05-16) जीव के अवगाह का नियम
05-16) धर्म और अधर्म द्रव्य का उपकार
05-18) आकाश द्रव्य का उपकार
05-18) पुद्गल द्रव्य का उपकार
05-20) पुद्गल का अन्य उपकार
05-20) जीव द्रव्य का उपकार
05-22) काल द्रव्य के उपकार
05-22) पुद्गल के गुण
05-24) पुद्गल की पर्याय
05-24) पुद्गल के भेद
05-26) स्कन्ध की उत्पत्ति
05-26) अणु की उत्पत्ति
05-28) स्कन्ध की उत्पत्ति का विशेष
05-28) द्रव्य का लक्षण

05-30) सत् का लक्षण
05-30) नित्य का स्वरूप
05-32) विरोधी धर्म एक साथ कैसे?
05-32) पुद्गल में बंध
05-34) बन्ध न होने का नियम
05-34) और भी
05-36) बन्ध का नियम
05-36) परिणमन का नियम
05-38) द्रव्य का और लक्षण
05-38) काल द्रव्य
05-40) व्यवहार काल का प्रमाण
05-40) गुण का लक्षण
05-42) परिणाम

6-आस्रवाधिकार

06-01) योग
06-02) आस्रव
06-02) भेद - पुण्य-पाप
06-04) आस्रव के कर्ता की अपेक्षा भेद
06-04) साम्परायिक आस्रव के भेद
06-06) आस्रव में विशेषता
06-06) आस्रव का अधिकरण
06-08) जीवाधिकरण
06-08) अजीवाधिकरण
06-10) ज्ञान-दर्शनावरण के आस्रव
06-10) असाता वेदनीय कर्म के आस्रव
06-12) सातावेदनीय कर्म के आस्रव
06-12) दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव
06-14) चारित्रमोहनीय का आस्रव
06-14) नारकायु का आस्रव
06-16) माया तिर्यंचायु का आस्रव
06-16) मनुष्यायु का आस्रव
06-18) मनुष्यायु का और भी आस्रव
06-18) सब आयुओं का आस्रव
06-20) देवायु के आस्रव
06-20) देवायु का और भी आस्रव
06-22) अशुभ नाम कर्म के आस्रव
06-22) शुभ नामकर्म के आस्रव
06-24) तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव
06-24) नीचगोत्र के आस्रव
06-26) उच्च गोत्र के आस्रव
06-26) अन्तराय कर्म का आस्रव

7-आस्रवाधिकार

07-01) व्रत
07-01) व्रती के भेद
07-03) प्रत्येक व्रत की भावनाएँ
07-03) अहिंसाव्रत की भावनाएँ
07-05) सत्य व्रत की भावनाएँ
07-05) अचौर्य व्रत की भावनाएँ
07-07) ब्रह्मचर्य व्रत की भावनाएँ
07-07) अपरिग्रह व्रत की भावनाएँ
07-09) पाप से विमुखता के लिए भावनाएं
07-09) और भी

07-11) परस्पर जीवों के साथ भावनाएं
07-11) संसार और शरीर के लिए भावना
07-13) हिंसा का लक्षण
07-13) झूठ का लक्षण
07-15) चोरी का लक्षण
07-15) कुशील का लक्षण
07-17) परिग्रह का लक्षण
07-17) व्रती का लक्षण
07-19) व्रती के भेद
07-19) श्रावक
07-21) श्रावक के और भी व्रत
07-21) सल्लेखना
07-23) सम्यक्त्व के पांच अतिचार
07-23) व्रत और शील के अतिचार
07-25) अहिंसा अणुव्रत के अतिचार
07-25) सत्याणुव्रत के अतिचार
07-27) अचौर्य अणुव्रत के अतिचार
07-27) स्वदारसंतोष अणुव्रत के अतिचार
07-29) परिग्रहपरिमाण अणुव्रत के अतिचार
07-29) दिग्विरतिव्रत के अतिचार
07-31) देशविरति के अतिचार
07-31) अनर्थदण्डविरति के अतिचार
07-33) सामायिक व्रत के अतिचार
07-33) प्रोषधोपवास के अतिचार
07-35) उपभोग-परिभोग-परिमाण व्रत के अतिचार
07-35) अतिथिसंविभाग व्रत के अतिचार
07-37) सल्लेखना के अतिचार
07-37) दान
07-39) दान में विशेषता

8-बंधाधिकार

08-01) बंध के हेतु
08-02) बन्ध
08-02) बंध के भेद
08-04) प्रकृतिबन्ध के रूप
08-04) मूल कर्म प्रकृतियों के भेद
08-06) ज्ञानावरण कर्म के भेद
08-06) दर्शनावरण कर्म के भेद
08-08) वेदनीय कर्म के भेद
08-08) मोहनीय कर्म के भेद
08-10) आयु कर्म के भेद
08-10) नामकर्म के भेद
08-12) गोत्रकर्म के भेद
08-12) अन्तराय कर्म के भेद
08-14) मूल कर्मों में उत्कृष्ट स्थिति
08-14) मूल कर्मों में जघन्य स्थिति
08-21) विपाक
08-21) विपाक का स्वभाव
08-23) निर्जरा
08-23) प्रदेश बन्ध
08-25) पुण्य प्रकृतियाँ
08-25) पाप प्रकृतियाँ

9-संवर-निर्जराधिकार

09-01) संवर
09-01) संवर का कारण
09-03) तप
09-03) गुप्ति
09-05) समिति
09-05) धर्म
09-07) अनुप्रेक्षा
09-07) परीषह जय का उद्देश्य
09-09) परीषह के प्रकार
09-09) दसवें से बारहवें गुणस्थान में परीषह
09-11) सयोग केवली के परीषह
09-11) बादर साम्पराय गुणस्थान तक परीषह
09-13) ज्ञानावरण से परीषह
09-13) दर्शनमोह और अन्तराय से परीषह
09-15) चारित्रमोह से परीषह
09-15) वेदनीय से परीषह
09-17) एक साथ एक जीव के परीषह
09-17) चारित्र के प्रकार
09-19) तप के प्रकार
09-19) आभ्यन्तर तप
09-21) आभ्यन्तर तपों के उपभेद
09-21) प्रायश्चित्त के प्रकार
09-23) विनय के प्रकार
09-23) वैयावृत्य के प्रकार
09-25) स्वाध्याय के प्रकार
09-25) व्युत्सर्ग के प्रकार
09-27) ध्यान के स्वामी और काल
09-27) ध्यान के प्रकार
09-29) मोक्ष के हेतु ध्यान
09-29) अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान
09-31) इष्ट वियोगज आर्तध्यान
09-31) पीड़ा चिंतन आर्तध्यान
09-33) निदान आर्तध्यान
09-33) आर्तध्यान के स्वामी
09-35) रौद्रध्यान और उसके स्वामी
09-35) धर्म-ध्यान
09-37) प्रथम दो शुक्लध्यान के स्वामी
09-37) शेष दो शुक्लध्यान के स्वामी
09-39) शुक्लध्यान के प्रकार
09-39) शुक्ल-ध्यान का योग-आलंबन
09-41) प्रथम दो शुक्ल-ध्यान की विशेषता
09-41) अपवाद
09-43) वितर्क का लक्षण
09-43) वीचार का लक्षण
09-45) सम्यग्दृष्टियों में निर्जरा का क्रम
09-45) निर्ग्रन्थ के भेद
09-47) पुलाक आदि मुनियों की विशेषता

10-मोक्षाधिकार

10-01) केवलज्ञान की उत्पत्ति
10-02) मोक्ष का लक्षण और कारण
10-02) किन भावों के नाश से मोक्ष?
10-04) किन भावों का मोक्ष में सद्भाव है?

10-04) मुक्त जीव का निवास
10-06) ऊर्ध्वगमन का कारण
10-06) प्रत्येक कारण का उदाहरण
10-08) मुक्त जीव लोकांत में क्यों ठहरते हैं?
10-08) मुक्त जीवों में भेद-व्यवहार

!! श्रीसर्वज्ञवीतरागाय नम: !!

श्रीमद्-भगवत्उमास्वामीदेव-प्रणीत

श्री

तत्त्वार्थ-सूत्र

मूल संस्कृत सूत्र, श्री पूज्यपाद-आचार्य विरचित 'सर्वार्थ-सिद्धि' नामक संस्कृत टीका का हिंदी अनुवाद, श्री अकलान्काचार्य विरचित 'तत्त्वार्थ-राजवार्तिक' नामक संस्कृत टीका का हिंदी अनुवाद सहित

आभार : महेंद्र-कुमार जैन 'न्यायाचार्य', सुपार्श्वमती-माताजी

!! नम: श्रीसर्वज्ञवीतरागाय !!

ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नम: ॥1॥
अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥2॥
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम: ॥3॥
॥ श्रीपरमगुरुवे नम:, परम्पराचार्यगुरुवे नम: ॥

अर्थ : बिन्दुसहित ॐकार को योगीजन सर्वदा ध्याते हैं, मनोवाँछित वस्तु को देने वाले और मोक्ष को देने वाले ॐकार को बार बार नमस्कार हो । निरंतर दिव्य-ध्वनि-रूपी मेघ-समूह संसार के समस्त पापरूपी मैल को धोनेवाली है मुनियों द्वारा उपासित भवसागर से तिरानेवाली ऐसी जिनवाणी हमारे पापों को नष्ट करो । जिसने अज्ञान-रूपी अंधेरे से अंधे हुये जीवों के नेत्र ज्ञानरूपी अंजन की सलाई से खोल दिये हैं, उस श्री गुरु को नमस्कार हो । परम गुरु को नमस्कार हो, परम्परागत आचार्य गुरु को नमस्कार हो ।

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमन: प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकम इदं शास्त्रं श्रीतत्त्वार्थ-सूत्र-नामधेयं, अस्य मूलाग्रन्थकर्तार: श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्तार: श्रीगणधरदेवा: प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्य श्रीआचार्यउमास्वामीदेव विरचितं, सर्वे श्रोतार: सावधानतया शृणवन्तु ॥

(समस्त पापों का नाश करनेवाला, कल्याणों का बढ़ानेवाला, धर्म से सम्बन्ध रखनेवाला, भव्यजीवों के मन को प्रतिबुद्ध-सचेत करनेवाला यह शास्त्र श्रीतत्त्वार्थ-सूत्र नाम का है, मूल-ग्रन्थ के रचयिता सर्वज्ञ-देव हैं, उनके बाद ग्रन्थ को गूंथनेवाले गणधर-देव हैं, प्रति-गणधर देव हैं उनके वचनों के अनुसार लेकर आचार्य श्रीआचार्यउमास्वामीदेव द्वारा रचित यह ग्रन्थ है । सभी श्रोता पूर्ण सावधानी पूर्वक सुनें ।)

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

आ. उमास्वामी (ई.श.3) कृत मोक्षमार्ग, तत्त्वार्थ दर्शन विषयक 10 अध्यायों में सूत्रबद्ध ग्रन्थ है। कुल सूत्र 357 हैं। इसी को मोक्षशास्त्र भी कहते हैं। दिगम्बर व श्वेताम्बर दोनों को समान रूप से मान्य है। जैन आम्नाय में यह सर्व प्रधान सिद्धान्त ग्रन्थ माना जाता है। जैन दर्शन प्ररूपक होने के कारण यह जैन बाइबल के रूप में समझा जाता है।

(शास्त्र वंदना)

वीर-हिमाचल तें निकसी, गुरु-गौतम के मुख-कुण्ड ढरी है ।
मोह-महाचल भेद चली, जग की जड़ता-तप दूर करी है ॥१॥
ज्ञान-पयोनिधि माँहि रली, बहुभंग-तरंगनि सौं उछरी है ।
ता शुचि-शारद गंगनदी प्रति, मैं अंजलि करि शीश धरी है ॥२॥

या जग-मन्दिर में अनिवार, अज्ञान-अंधेर छ्यौ अति भारी ।
श्रीजिन की धुनि दीपशिखा-सम, जो नहिं होत प्रकाशनहारी ॥३॥
तो किस भांति पदारथ-पाँति, कहाँ लहते? रहते अविचारी ।
या विधि सन्त कहैं धनि हैं, धनि हैं, जिन-बैन बड़े उपकारी ॥४॥
त्रैकाल्यं द्रव्य-षट्कं नव-पद-सहितं जीव-षट्काय-लेश्या:
पंचान्ये चास्तिकाया व्रत-समिति-गति-ज्ञान-चारित्र-भेदा:
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवन-महितै: प्रोक्तमर्हद्भिरीशै:
प्रत्येति श्रद्धति स्पृशति च मतिमान् य: स वै शुद्धदृष्टि:
अर्थ - तीन काल, छह द्रव्य, नव पदार्थ, छह काय, छह्लेश्या, पांच अस्तिकाय , पांच व्रत, पांच समिति, गति, पांच ज्ञान और पांच चारित्र भेद रूप ये सब मोक्ष के मूल हैं, ऐसा तीनों लोकों के पूज्य अर्हंत भगवान के द्वारा कहा है । जो बुद्धिमान इनकी प्रतिति करता है , श्रद्धान करता है और स्पर्श करता है / इनके नजदीक जाता है, वह निश्चय से शुद्धदृष्टि है ॥
सिद्धे जयप्पसिद्धे चउव्विहाराहणा-फलं पत्ते
वंदित्ता अरहंते वोच्छं आराहणा कमसो
उज्जोवणमुज्जवणं णिव्वाहणं साहणं च णिच्छरणं
दंसण-णाण-चरित्तं तवाणमाराहणा भणिया **अर्थ** - जगत में प्रसिद्ध चार प्रकार की आराधना के फल को प्राप्त सिद्धों और अर्हन्तों को नमस्कार करके क्रम से आराधना को कहूंगा । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्त्व के उद्योतन, उद्द्यवन, निवर्हन, साधन और निस्तरण को आराधना कहा है ॥
मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये ॥
अन्वयार्थ : जो मोक्षमार्ग के नेता हैं, अग्रणी हैं, पथप्रदर्शक हैं; कर्मरूपी पर्वतों को भेदने वाले हैं और सम्पूर्ण तत्त्वों के ज्ञाता हैं, ऐसे आप्त को मैं उनके गुणों - सर्वज्ञतादि की प्राप्ति के लिए नमस्कार करता हूँ ।
तत्त्वार्थ-सूत्र टीका कर्ता टीका का नाम श्लोक-प्रमाण काल समंतभद्र-स्वामी गंधहस्ति 84,000 ई.600 पूज्यपाद-स्वामी सर्वार्थसिद्धि 4,000 वि.श. 6 अकलंक-भट्ट राजवार्तिक 16,000 ई.620-680 विद्यानंद-स्वामी श्लोकवार्तिक 20,000 ई. 775-840 अष्ट-सहस्री 8,000 आप्त-परीक्षा 3,000 अभयनन्दि तत्त्वार्थ वृत्ति ई.श.10-11 आ. शिवकोटि रत्नमाला ई.श. 11 आ. भास्करनन्दि सुखबोध ई.श. 12 आ. बालचन्द्र कन्नड टीका ई.श. 13 प्रभाचन्द्र तत्त्वार्थ रत्नप्रभाकर ई. 1432 योगदेव तत्त्वार्थ वृत्ति ई. 1579 भट्टारक श्रुतसागर तत्त्वार्थ वृत्ति वि.श.16 पं सदासुखदास **अर्थ**-प्रकाशिका ई. 1795-1866

मोक्ष का उपाय

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥1॥
अन्वयार्थ : सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों मिलकर मोक्ष का मार्ग हैं ॥१॥

सम्यग्दर्शन का लक्षण

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥2॥
अन्वयार्थ : अपने अपने स्वरूप के अनुसार पदार्थों का जो श्रद्धान होता है वह सम्यग्दर्शन है ॥२॥

उत्पत्ति के आधार पर सम्यग्दर्शन के भेद

तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥3॥
अन्वयार्थ : वह (सम्यग्दर्शन) निसर्ग से और अधिगम से उत्पन्न होता है ॥३॥

सात तत्त्व

जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥4॥

अन्वयार्थ : जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये तत्त्व हैं ॥४॥

निक्षेपों का कथन

नामस्थापनाद्रव्यभाव तस्तन्न्यासः ॥5॥

अन्वयार्थ : नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव रूप से उनका अर्थात् सम्यग्दर्शन आदि और जीव आदि का न्यास (निक्षेप) होता है ॥५॥

तत्त्वों को जानने का उपाय

प्रमाणनयैरधिगमः ॥6॥

अन्वयार्थ : प्रमाण और नयों से पदार्थों का ज्ञान होता है ॥६॥

तत्त्वों को जानने का अन्य उपाय

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः ॥7॥

अन्वयार्थ : निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान से सम्यग्दर्शन आदि विषयों का ज्ञान होता है ॥७॥

जीव आदि को जानने के और भी उपाय

सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥8॥

अन्वयार्थ : सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व से भी सम्यग्दर्शन आदि विषयों का ज्ञान होता है ॥८॥

ज्ञान के भेद

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥9॥

अन्वयार्थ : मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पाँच ज्ञान हैं ॥९॥

ज्ञान ही प्रमाण है

तत्प्रमाणे ॥10॥

अन्वयार्थ : वह पाँचों प्रकार का ज्ञान दो प्रमाणरूप है ॥१०॥

परोक्ष प्रमाण

आद्ये परोक्षम् ॥11॥

अन्वयार्थ : प्रथम दो ज्ञान परोक्ष प्रमाण हैं ॥११॥

प्रत्यक्ष प्रमाण ज्ञान

प्रत्यक्षमन्यत् ॥12॥

अन्वयार्थ : शेष सब ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं ॥१२॥

परोक्ष प्रमाण के संबंध में विशेष कथन

मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥13॥

अन्वयार्थ : मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध ये पर्यायवाची नाम हैं ॥१३॥

मतिज्ञान किससे उत्पन्न होता है

तदिन्द्रयानिन्द्रिय निमित्तम् ॥14॥

अन्वयार्थ : वह(मतिज्ञान) इन्द्रिय और मन के निमित्त से होता है ॥१४॥

मतिज्ञान के भेद

अवग्रहेहावाय धारणाः ॥15॥

अन्वयार्थ : अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये मतिज्ञान के चार भेद हैं ॥१५॥

अवग्रह आदि ज्ञानों के और भेद

बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥16॥

अन्वयार्थ : सेतर (प्रतिपक्षसहित) बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनि:सृत, अनुक्त और ध्रुव के अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणारूप मतिज्ञान होते हैं ॥१६॥

बहु बहुविध आदि किसके विशेषण हैं

अर्थस्य ॥17॥

अन्वयार्थ : अर्थ के (वस्तु के) अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चारों मतिज्ञान होते हैं ॥१७॥

अवग्रह आदि ज्ञान का नियम

व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥18॥

अन्वयार्थ : व्यंजन का अवग्रह ही होता है ॥१८॥

व्यंजनावग्रह सभी इन्द्रियों से नही होता

न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥19॥

अन्वयार्थ : चक्षु और मन से व्यंजनावग्रह नहीं होता ॥१९॥

श्रुतज्ञान का स्वरूप

श्रुतं मतिपूर्वं द्वयनेकद्वादशभेदम् ॥20॥

अन्वयार्थ : श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है। वह दो प्रकार का, अनेक प्रकार का और बारह प्रकार का है ॥२०॥

अवधिज्ञान के भेद

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥21॥

अन्वयार्थ : भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है ॥२१॥

अवधिज्ञान के स्वामी

क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥22॥

अन्वयार्थ : क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान छह प्रकार का है, जो शेष अर्थात् तिर्यंचों और मनुष्यों के होता है ॥२२॥

मनःपर्यय के भेद

ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥23॥

अन्वयार्थ : ऋजुमति और विपुलमति मन:पर्ययज्ञान है ॥२३॥

मनःपर्यय के दोनो भेदों में विशेषता

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥24॥

अन्वयार्थ : विशुद्धि और अप्रतिपात की अपेक्षा इन दोनों में अन्तर है ॥२४॥

अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान में अन्तर

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्यययोः ॥25॥

अन्वयार्थ : विशुद्धि, क्षेत्र, स्वामी और विषय की अपेक्षा अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान में भेद है ॥२५॥

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का विषय

मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥26॥

अन्वयार्थ : मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की प्रवृत्ति कुछ पर्यायों से युक्त सब द्रव्यों में होती है ॥२६॥

अवधिज्ञान का विषय

रूपिष्ववधेः ॥27॥

अन्वयार्थ : अवधिज्ञान की प्रवृत्ति रूपी पदार्थों में होती है ॥२७॥

मनःपर्यय ज्ञान का विषय

तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य ॥28॥

अन्वयार्थ : मन:पर्ययज्ञान की प्रवृत्ति अवधिज्ञान के विषय के अनन्तवें भाग में होती है ॥२८॥

केवल ज्ञान का विषय

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥29॥

अन्वयार्थ : केवलज्ञान की प्रवृत्ति सब द्रव्य और उनकी सब पर्यायों में होती है ॥२९॥

एक साथ कितने ज्ञान संभव?

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥30॥

अन्वयार्थ : एक आत्मा में एक साथ एक से लेकर चार ज्ञान तक भजना से होते हैं ॥३०॥

कौन-कौन से ज्ञान मिथ्या भी होते हैं?

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥31॥

अन्वयार्थ : मति, श्रुत और अवधि ये तीन विपर्यय भी हैं ॥३१॥

मिथ्यादृष्टि का ज्ञान मिथ्या क्यों?

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥32॥

अन्वयार्थ : वास्तविक और अवास्तविक के अन्तर के बिना यदृच्छोपलब्धि (जब जैसा जी में आया उस रूप ग्रहण होने) के कारण उन्मत्त की तरह ज्ञान भी अज्ञान हो जाता है ॥३२॥

नय के भेद

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः ॥33॥

अन्वयार्थ : नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत ये सात नय हैं ॥३३॥

जीव के परिणामों (भावों) के प्रकार

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥1॥

अन्वयार्थ : औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदयिक और पारिणामिक ये जीव के स्वतत्त्व हैं ॥१॥

परिणामों (भावों) के उत्तर-भेद

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥2॥

अन्वयार्थ : उक्त पाँच भावों के क्रम से दो, नौ, अठारह, इक्कीस और तीन भेद हैं ॥२॥

औपशमिकभाव के भेद

सम्यक्त्वचारित्रे ॥3॥

अन्वयार्थ : औपशमिक भाव के दो भेद हैं - औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र ॥३॥

क्षायिकभाव के भेद

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥4॥

अन्वयार्थ : क्षायिक भाव के नौ भेद हैं - क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र ॥४॥

क्षायोपशमिक भाव के भेद

ज्ञानाज्ञानदर्शन लब्धयश्चतुस्त्रित्रि पञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्र संयमासंयमाश्च ॥5॥

अन्वयार्थ : क्षायोपशमिक भाव के अठारह भेद हैं - चार ज्ञान, तीन अज्ञान, तीन दर्शन, पाँच दानादि लब्धियाँ, सम्यक्त्व, चारित्र और संयमासंयम ॥५॥

औदयिक भाव के भेद

गतिकषायलिंग-मिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्यैकैकैकैक-षड्भेदाः ॥6॥

अन्वयार्थ : औदयिक भाव के इक्कीस भेद हैं - चार गति, चार कषाय, तीन लिंग, एक मिथ्यादर्शन, एक अज्ञान, एक असंयम, एक असिद्ध भाव और छह लेश्याएँ ॥६॥

पारिणामिक भाव के भेद

जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥7॥

अन्वयार्थ : पारिणामिक भाव के तीन भेद हैं - जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व ॥७॥

जीव का लक्षण

उपयोगो लक्षणम् ॥8॥

अन्वयार्थ : उपयोग जीव का लक्षण है॥८॥

उपयोग के भेद

स द्विविधोऽष्ट-चतुर्भेदः ॥9॥

अन्वयार्थ : वह उपयोग दो प्रकार का है - ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है ओर दर्शनोपयोग चार प्रकार का है ॥९॥

जीव के भेद

संसारिणो मुक्ताश्च ॥10॥

अन्वयार्थ : जीव दो प्रकार के हैं - संसारी और मुक्त ॥१०॥

संसारी जीवों के भेद

समनस्काऽमनस्काः ॥11॥

अन्वयार्थ : मनवाले और मनरहित ऐसे संसारी जीव हैं ॥११॥

संसारी जीवों के और भी भेद

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥12॥

अन्वयार्थ : तथा संसारी जीव त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार हैं ॥१२॥

स्थावर जीवों के भेद

पृथिव्यप्तेजो वायु-वनस्पतयः स्थावराः ॥13॥

अन्वयार्थ : पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक ये पाँच स्थावर हैं ॥१३॥

त्रस जीवों के भेद

द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥14॥

अन्वयार्थ : दो इन्द्रिय आदि त्रस हैं ॥१४॥

इन्द्रियों की संख्या

पंचेद्रियाणि ॥15॥

अन्वयार्थ : इन्द्रियाँ पाँच हैं ॥१५॥

इन्द्रियों के प्रकार

द्विविधानि ॥16॥

अन्वयार्थ : वे प्रत्येक दो-दो प्रकार की हैं ॥१६॥

द्रव्य-इन्द्रियों का स्वरूप

निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥17॥

अन्वयार्थ : निर्वृत्ति और उपकरणरूप द्रव्येन्द्रिय है॥१७॥

भाव-इन्द्रियों का स्वरूप

लब्ध्युपयोगो भावेन्द्रियम् ॥18॥

अन्वयार्थ : लब्धि और उपयोगरूप भावेन्द्रिय है॥१८॥

इन्द्रियों के प्रकार

स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुःश्रोत्राणि ॥19॥

अन्वयार्थ : स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पाँच इन्द्रियाँ हैं ॥१९॥

इन्द्रियों के विषय

स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दास्तदर्थाः ॥20॥

अन्वयार्थ : स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द ये क्रम से उन इन्द्रियों के विषय हैं ॥२०॥

मन के विषय

श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥21॥

अन्वयार्थ : श्रुत मन का विषय है॥२१॥

स्पर्शन इन्द्रिय के स्वामी

वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥22॥

अन्वयार्थ : वनस्पतिकायिक तक के जीवों के एक अर्थात् प्रथम इन्द्रिय होती है ॥२२॥

शेष इन्द्रियों के स्वामी

कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥23॥

अन्वयार्थ : कृमि, पिपीलिका, भ्रमर और मनुष्य आदि के क्रम से एक-एक इन्द्रिय अधिक होती है॥२३॥

संज्ञी जीव का स्वरूप

संज्ञिनः समनस्काः ॥24॥

अन्वयार्थ : मनवाले जीव संज्ञी जीव होते हैं॥२४॥

विग्रह गति में योग

विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥25॥

अन्वयार्थ : विग्रहगति में कार्मणकाय योग होता है॥२५॥

विग्रह गति में गमन

अनुश्रेणिः गतिः ॥26॥

अन्वयार्थ : गति श्रेणी के अनुसार होती है॥२६॥

मुक्त जीव का गमन

अविग्रहा जीवस्य ॥27॥

अन्वयार्थ : मुक्त जीव की गति विग्रहरहित होती है॥२७॥

विग्रह गति का काल

विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥28॥

अन्वयार्थ : संसारी जीव की गति विग्रहरहित और विग्रहवाली होती है। उसमें विग्रहवाली गति चार समय से पहले अर्थात् तीन समय तक होती है॥२८॥

ऋजु-गति का काल

एकसमयाऽविग्रहा ॥29॥

अन्वयार्थ : एक समयवाली गति विग्रहरहित होती है॥२९॥

विग्रह-गति में अनाहारक

एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः ॥30॥

अन्वयार्थ : एक, दो या तीन समय तक जीव अनाहारक रहता है॥३०॥

जन्म के प्रकार

सम्मूर्च्छन-गर्भोपपादा जन्म ॥31॥

अन्वयार्थ : सम्मूर्च्छन, गर्भ और उपपाद ये (तीन) जन्म हैं ॥३१॥

जन्म-योनि के प्रकार

सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥32॥

अन्वयार्थ : सचित्त, शीत और संवृत तथा इनकी प्रतिपक्षभूत अचित्त, उष्ण और विवृत तथा मिश्र अर्थात् सचित्ताचित्त, शीतोष्ण और संवृतविवृत ये उसकी अर्थात् जन्म की योनियाँ हैं ॥३२॥

गर्भ-जन्म के स्वामी

जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ॥33॥

अन्वयार्थ : जरायुज, अण्डज और पोत जीवों का गर्भजन्म होता है ॥३३॥

उपपाद-जन्म के स्वामी

देवनारकाणामुपपादः ॥34॥

अन्वयार्थ : देव और नारकियों का उपपाद जन्म होता है ॥३४॥

सम्मूर्छन-जन्म के स्वामी

शेषाणां सम्मूर्च्छनं ॥35॥

अन्वयार्थ : शेष सब जीवों का सम्मूर्च्छन जन्म होता है ॥३५॥

शरीर के प्रकार

औदारिक-वैक्रियिकाहारक-तैजस-कार्मणानि शरीराणि ॥36॥

अन्वयार्थ : औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण ये पाँच शरीर हैं ॥३६॥

शरीरों में स्थूलता-सूक्ष्मता

परं परं सूक्ष्मम् ॥37॥

अन्वयार्थ : आगे-आगे का शरीर सूक्ष्म है ॥३७॥

शरीरों के प्रदेश

प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ॥38॥

अन्वयार्थ : तैजस से पूर्व तीन शरीरों में आगे-आगे का शरीर प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणा है ॥३८॥

तैजस-कार्मण शरीरों के प्रदेश

अनन्तगुणे परे ॥39॥

अन्वयार्थ : परवर्ती दो शरीर प्रदेशों की अपेक्षा उत्तरोत्तर अनन्तगुणे हैं ॥३९॥

तैजस-कार्मण शरीरों में सूक्ष्मता

अप्रतीघाते ॥40॥

अन्वयार्थ : प्रतीघात रहित हैं ॥४०॥

तैजस-कार्मण का जीव के साथ सम्बन्ध

अनादिसंबन्धे च ॥41॥

अन्वयार्थ : आत्मा के साथ अनादि सम्बन्धवाले हैं ॥४१॥

दोनों शरीरों के स्वामी

सर्वस्य ॥42॥

अन्वयार्थ : तथा सब संसारी जीवों के होते हैं ॥४२॥

एक जीव के कितने शरीर सम्भव हैं?

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥43॥

अन्वयार्थ : एक साथ एक जीव के तैजस और कार्मण से लेकर चार शरीर तक विकल्प से होते हैं ॥४३॥

कार्मण शरीर के बारे में विशेष

निरुपभोगमन्त्यम् ॥44॥

अन्वयार्थ : अन्तिम शरीर उपभोग-रहित है ॥४४॥

गर्भज और सम्मूर्छनज का शरीर

गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् ॥45॥

अन्वयार्थ : पहला शरीर गर्भ और संमूर्च्छन जन्म से पैदा होता है ॥४५॥

उपपाद जन्म के साथ शरीर

औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥46॥

अन्वयार्थ : वैक्रियिक शरीर उपपाद जन्म से पैदा होता है ॥४६॥

वैक्रियक शरीर के अन्य स्वामी

लब्धिप्रत्ययं च॥47॥

अन्वयार्थ : तथा लब्धि से भी पैदा होता है ॥४७॥

तैजस शरीर की विशेषता

तैजसमपि ॥48॥

अन्वयार्थ : तैजस शरीर भी लब्धि से पैदा होता है ॥४८॥

आहारक शरीर का स्वरूप

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥49॥

अन्वयार्थ : आहारक शरीर शुभ, विशुद्ध और व्याघात रहित है और वह प्रमत्तसंयत के ही होता है ॥४९॥

नारक और संमूर्च्छिन में लिंग

नारकसंमूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥50॥

अन्वयार्थ : नारक और संमूर्च्छिन नपुंसक होते हैं ॥५०॥

देवों में लिंग

न देवाः ॥51॥

अन्वयार्थ : देव नपुंसक नहीं होते ॥५१॥

मनुष्य-तिर्यन्चों में लिंग

शेषास्त्रिवेदाः ॥52॥

अन्वयार्थ : शेष जीवों के यथासंभव तीनों वेद होते हैं ॥५२॥

आयु का अनपवर्तन सम्बन्धी नियम

औपपादिक चरमोत्तम-देहाऽसंख्येय-वर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥53॥

अन्वयार्थ : उपपाद जन्मवाले (देव / नारकी), चरमोत्तम देहवाले (तद्भव-मोक्षगामी) और असंख्यात वर्ष की आयुवाले (भोग-भूमिज) जीव परिपूर्ण आयु वाले होते हैं ॥५३॥

सात पृथ्वियां

रत्न-शर्करा-बालुका-पंक-धूम-तमो-महातमः प्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाश प्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः॥1॥

अन्वयार्थ : रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा ये सात भूमियाँ घनाम्बु, वात और आकाश के सहारे स्थित हैं तथा क्रम से नीचे-नीचे हैं ॥१॥

सात पृथ्वियों में नरकों की संख्या

तासु त्रिंशत्पंचविंशति पंचदशदश-त्रि-पंचोनैक-नरक-शतसहस्राणि पंच चैव यथाक्रमम्॥2॥

अन्वयार्थ : उन भूमियों में क्रम से तीस लाख, पच्चीस लाख, पन्द्रह लाख, दस लाख, तीन लाख, पाँच कम एक लाख और पाँच नरक हैं ॥२॥

नारकीयों की लेश्यादि दुःख

नारका नित्याऽशुभतर-लेश्या-परिणामदेह-वेदना-विक्रियाः॥3॥

अन्वयार्थ : नारकी निरन्तर अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना और विक्रियावाले हैं ॥३॥

पारस्परिक दुःख

परस्परोदीरित-दुःखाः॥4॥

अन्वयार्थ : तथा वे परस्पर उत्पन्न किये गये दुःखवाले होते हैं ॥४॥

देव-कृत दुःख

संक्लिष्टासुरोदीरित-दुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः॥5॥

अन्वयार्थ : और चौथी भूमि से पहले तक वे संक्लिष्ट असुरों के द्वारा उत्पन्न किये गये दुःखवाले भी होते हैं ॥५॥

नरकों में उत्कृष्ट आयु

तेष्वेक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः॥6॥
अन्वयार्थ : उन नरकों में जीवों की उत्कृष्ट स्थिति क्रम से एक, तीन, सात, दस, सत्रह, बाईस और तैंतीस सागरोपम है ॥६॥
नरक-गति के पटलों में जघन्य / उत्कृष्ट आयुपटल संख्याप्रथम पृथ्वीद्वितीय पृथ्वीतृतीय पृथ्वीचतुर्थ पृथ्वीपंचम पृथ्वीषष्ट पृथ्वीसप्तम पृथ्वीजघन्यउत्कृष्टजघन्यउत्कृष्टजघन्यउत्कृष्टजघन्यउत्कृष्टजघन्यउत्कृष्टजघन्यउत्कृष्टजघन्यउत्कृष्टसामान्य10,000 वर्ष1 सागर1337710101717222233110,000 वर्ष90,000 वर्ष113/11331/9752/71057/51756/32233290,000 वर्ष90,00,000 वर्ष13/1115/1131/935/952/755/757/564/556/361/3390,00,000 वर्षअसं. कोटि पूर्व15/1117/1135/939/955/758/764/571/561/3224असं. कोटि पूर्व1/10 सागर17/1119/1139/943/958/761/771/578/551/10 सागर1/5 सागर19/1121/1143/947/961/764/778/51761/5 सागर3/10 सागर21/1123/1147/951/964/767/773/10 सागर2/5 सागर23/1125/1151/955/967/71082/5 सागर1/2 सागर25/1127/1155/959/991/2 सागर3/5 सागर27/1129/1159/97103/5 सागर7/10 सागर29/1131/11117/10 सागर4/5 सागर31/113-0124/5 सागर9/10 सागर139/10 सागर1 सा

मध्य-लोक में द्वीप समुद्र

जम्बूद्वीप-लवणोदादयः शुभनामानो द्वीप-समुद्रा॥7॥
अन्वयार्थ : जम्बूद्वीप आदि शुभ नामवाले द्वीप और लवणोद आदि शुभ नामवाले समुद्र हैं॥७॥

द्वीप -समुद्र का आकार

द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः॥8॥
अन्वयार्थ : वे सभी द्वीप और समुद्र दूने-दूने व्यासवाले, पूर्व-पूर्व द्वीप और समुद्र को वेष्टित करने वाले और चूड़ी के आकार वाले हैं ॥८॥

जम्बू-द्वीप

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः॥9॥
अन्वयार्थ : उन सबके बीच में गोल और एक लाख योजन विष्कम्भवाला जम्बूद्वीप है। जिसके मध्य में नाभि के समान मेरु पर्वत है ॥९॥

सात क्षेत्र

भरतहैमवत-हरि-विदेह-रम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि॥10॥
अन्वयार्थ : भरतवर्ष, हैमवतवर्ष, हरिवर्ष, विदेहवर्ष, रम्यकवर्ष, हैरण्यवतवर्ष और ऐरावतवर्ष ये सात क्षेत्र हैं ॥१०॥

छह पर्वत

तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषध-नील-रुक्मि-शिखरिणो वर्षधर-पर्वताः॥11॥
अन्वयार्थ : उन क्षेत्रों को विभाजित करनेवाले और पूर्व-पश्चिम लम्बे ऐसे हिमवन्, महाहिमवन्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी ये छह वर्षधर पर्वत हैं ॥११॥

पर्वतों के रंग

हेमार्जुन-तपनीय वैडूर्य-रजत हेममयाः॥12॥
अन्वयार्थ : ये छहों पर्वत क्रम से सोना, चाँदी, तपाया हुआ सोना, वैडूर्यमणि, चाँदी और सोना इनके समान रंगवाले हैं ॥१२॥

पर्वतों का आकार

मणि-विचित्र-पार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः॥13॥

अन्वयार्थ : इनके पार्श्व मणियों से चित्र-विचित्र हैं तथा वे ऊपर, मध्य और मूल में समान विस्तारवाले हैं ॥१३॥

पर्वतों पर तालाब

पद्ममहापद्मतिगिञ्छकेशरि महापुण्डरीकपुण्डरीका-हृदास्तेषामुपरि॥14॥

अन्वयार्थ : इन पर्वतों के ऊपर क्रम से पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक ये तालाब हैं ॥१४॥

तालाब की लम्बाई-चौड़ाई

प्रथमो योजन-सहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो हृदः।॥15॥

अन्वयार्थ : पहला तालाब एक हजार योजन लम्बा और इससे आधा चौड़ा है ॥१५॥

तालाब की गहराई

दशयोजनावगाहः॥16॥

अन्वयार्थ : तथा दस योजन गहरा है ॥१६॥

तालाब के बीच में कमल

तन्मध्ये योजनं पुष्करम्॥17॥

अन्वयार्थ : इसके बीच में एक योजन का कमल है ॥१७॥

बाकी तालाबों के आकार

तद् द्विगुण-द्विगुणा हृदाः पुष्कराणि च॥18॥

अन्वयार्थ : आगे के तालाब और कमल दूने-दूने हैं ॥१८॥

तालाबों में देवियों का निवास

तन्निवासिन्यो देव्यः श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिक परिषत्काः ॥19॥

अन्वयार्थ : इनमें श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये देवियाँ सामानिक और परिषद् देवों के साथ निवास करती हैं। तथा इनकी आयु एक पल्योपम है ॥१९॥

क्षेत्रों की नदियाँ

गंगासिन्धु रोहिद्रोहितास्या-हरिद्धरिकान्ता सीतासीतोदा-नारीनरकान्ता सुवर्णरूप्यकूला रक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥20॥

अन्वयार्थ : इन भरत आदि क्षेत्रों में-से गंगा, सिन्धु, रोहित, रोहितास्या, हरित्, हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता और रक्तोदा नदियाँ बही हैं ॥२०॥

नदियों की दिशा

द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः॥21॥

अन्वयार्थ : दो-दो नदियों में-से पहली-पहली नदी पूर्व समुद्र को जाती है ॥२१॥

तीसरी नदी की दिशा

शेषास्त्वपरगाः॥22॥

अन्वयार्थ : किन्तु शेष नदियाँ पश्चिम समुद्र को जाती हैं ॥२२॥

परिवार नदियाँ

चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गंगासिन्ध्वादयो नद्यः॥23॥

अन्वयार्थ : गंगा और सिन्धु आदि नदियों की चौदह-चौदह हजार परिवार नदियाँ हैं ॥२३॥

भरत क्षेत्र का विस्तार

भरतः षड्विंशति-पंचयोजनशत-विस्तारः षट्चैकोनविंशतिभागा-योजनस्य ॥24॥

अन्वयार्थ : भरत क्षेत्र का विस्तार पाँच सौ छब्बीस सही छह बटे उन्नीस योजन है ॥२४॥

बाकी क्षेत्रों का विस्तार

तद् द्विगुण द्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः॥25॥

अन्वयार्थ : विदेह पर्यन्त पर्वत और क्षेत्रों का विस्तार भरत क्षेत्र के विस्तार से दूना-दूना है ॥२५॥

उत्तर-दक्षिण में समानता

उत्तरा दक्षिण-तुल्याः ॥26॥

अन्वयार्थ : उत्तर के क्षेत्र और पर्वतों का विस्तार दक्षिण के क्षेत्र और पर्वतों के समान है ॥२६॥

भरत-एरावत क्षेत्र में काल परिवर्तन

भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥27॥

अन्वयार्थ : भरत और ऐरावत क्षेत्रों में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के छह समयों की अपेक्षा वृद्धि और ह्रास होता रहता है ॥२७॥

बाकी क्षेत्रों में काल परिवर्तन

ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः॥28॥

अन्वयार्थ : भरत और ऐरावत के सिवा शेष भूमियाँ अवस्थित हैं ॥२८॥

मनुष्यों की आयु

एकद्वित्रिपल्योपम-स्थितयो हैमवतक हारिवर्षक दैवकुरुवकाः॥29॥

अन्वयार्थ : हैमवत, हरिवर्ष और देवकुरु के मनुष्यों की स्थिति क्रम से एक, दो और तीन पल्योपम प्रमाण है॥२९॥

उत्तर-दक्षिण में आयु में समानता

तथोत्तराः॥30॥

अन्वयार्थ : दक्षिण के समान उत्तर में है ॥३०॥

विदेह क्षेत्र में आयु

विदेहेषु संख्येयकालाः॥31॥

अन्वयार्थ : विदेहों में संख्यात वर्ष की आयुवाले मनुष्य हैं ॥३१॥

भरत क्षेत्र का विस्तार

भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः॥32॥

अन्वयार्थ : भरत क्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप का एक सौ नब्बेवाँ भाग है ॥३२॥

धातकीखण्ड में क्षेत्र तथा पर्वत

द्विर्धातकीखण्डे॥33॥

अन्वयार्थ : धातकीखण्ड में क्षेत्र तथा पर्वत आदि जम्बूद्वीप से दूने हैं॥३३॥

पुष्करार्द्ध द्वीप में क्षेत्र और पर्वत

पुष्करार्द्धे च॥34॥

अन्वयार्थ : पुष्करार्द्ध में उतने ही क्षेत्र और पर्वत हैं ॥३४॥

मनुष्यों का गमन

प्राङ् मानुषोत्तरान्मनुष्याः॥35॥

अन्वयार्थ : मानुषोत्तर पर्वत के पहले तक ही मनुष्य हैं ॥३५॥

मनुष्यों के प्रकार

आर्या म्लेच्छाश्च॥36॥

अन्वयार्थ : मनुष्य दो प्रकार के हैं-आर्य और म्लेच्छ ॥३६॥

कर्म-भूमि

भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः॥37॥

अन्वयार्थ : देवकुरु और उत्तरकुरु के सिवा भरत, ऐरावत और विदेह ये सब कर्मभूमियाँ हैं ॥३७॥

मनुष्यों की उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति

नृस्थितीपरावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते॥38॥

अन्वयार्थ : मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम और जघन्य अन्तर्मुहूर्त है ॥३८॥

तिर्यंचों की स्थिति

तिर्यग्योनिजानां च॥39॥

अन्वयार्थ : तिर्यंचों की स्थिति भी उतनी ही है ॥३९॥

देवों के प्रकार

देवाश्चतुर्णिकाया: ॥1॥

अन्वयार्थ : देव चार निकाय वाले हैं ॥१॥

भवनत्रिक-देवों में लेश्या

आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्या: ॥2॥

अन्वयार्थ : आदि के तीन निकायों में पीत पर्यन्त चार लेश्याएँ हैं ॥२॥

देवों के उत्तर भेद

दशाष्ट-पञ्च-द्वादश-विकल्पा कल्पोपपन्न पर्यन्ता: ॥3॥

अन्वयार्थ : वे कल्पोपपन्न देव तक के चार निकाय के देव क्रम से दस, आठ, पांच और बारह भेद वाले हैं ॥३॥

दस भेद

इंद्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषदात्मरक्ष-लोकपालानीक-प्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकश: ॥4॥

अन्वयार्थ : उक्त दस आदि भेदों में-से प्रत्येक इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य ओर किल्विषिक रूप हैं ॥४॥

भेदों में अपवाद

त्रायस्त्रिंश-लोकपाल-वर्ज्या व्यंतरज्योतिष्का: ॥5॥

अन्वयार्थ : किन्तु व्यन्तर और ज्योतिष्क देव त्रायस्त्रिंश और लोकपाल इन दो भेदों से रहित है ॥५॥

देवों में भेद इन्द्र सामानिक त्रायस्त्रिंश पारिषद आत्मरक्ष लोकपाल अनीक प्रकीर्णक अभियोग्य किल्विषिक भवनवासी □ □ □ □ □ □ □ □ □ □ व्यंतर □ □ X □ □ X □ □ □ □ ज्योतिष्क □ □ X □ □ X □ □ □ □ वैमानिक □ □ □ □ □ □ □ □ □ □

भवनावासी और व्यंतर में इंद्र

पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥6॥

अन्वयार्थ : प्रथम दो निकायो (भवनवासी / व्यंतर) में दो-दो इन्द्र हैं ॥६॥

काय-प्रविचार कहाँ तक?

काय-प्रवीचारा आ ऐशानात् ॥7॥

अन्वयार्थ : ऐशान तक के देव कायप्रवीचार अर्थात शरीर से विषय सुख भोगने वाले होते हैं ॥७॥

स्पर्श, रूप और शब्द प्रविचार

शेषा: स्पर्श-रूप-शब्द-मन: प्रवीचारा: ॥8॥

अन्वयार्थ : शेष देव स्पर्श, रूप, शब्द और मन से विषय सुख भोगने वाले होते हैं ॥८॥

प्रविचार रहित देव

परेऽप्रवीचारा: ॥9॥

अन्वयार्थ : बाकी के सब देव विषय सुख से रहित होते हैं ॥९॥

भवनवासी देवों के प्रकार

भवन-वासिनोऽसुरनाग-विद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधि-द्वीप-दिक्कुमारा: ॥10॥

अन्वयार्थ : भवनवासी देव दस प्रकार के हैं - असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार ॥१०॥

व्यन्तर देवों के प्रकार

व्यन्तरा: किन्नर-किम्पुरुष-महोरग-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचा: ॥11॥

अन्वयार्थ : व्यन्तर देव आठ प्रकार के हैं- किन्नर, किम्पुरूष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच ॥११॥

ज्योतिषी देवों के प्रकार

ज्योतिष्का: सूर्याचन्द्रमसौ ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णक-तारकाश्च ॥12॥

अन्वयार्थ : ज्योतिषी देव पाँच प्रकार के हैं - सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारे ॥१२॥

ज्योतिषी देवों में गति

मेरु-प्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥13॥

अन्वयार्थ : ज्योतिषी देव मनुष्यलोक में मेरू की प्रदक्षिणा करते हैं और निरन्तर गतिशील हैं ॥१३॥

ज्योतिषी-विमान द्वारा काल-की गणना

तत्कृत: काल विभाग: ॥14॥

अन्वयार्थ : उन (ज्योतिष्क देवों)के द्वारा काल-विभाग होता है ।

ज्योतिष्क देव में स्थिरता

बहिरवस्थिता: ॥15॥

अन्वयार्थ : मनुष्य लोक के बाहर ज्योतिष्क देव स्थिर हैं, गमन नहीं करते ।

वैमानिक देवों का वर्णन

वैमानिका: ॥16॥

अन्वयार्थ : अब वैमानिक देवों का वर्णन करते हैं ।

वैमानिक देवों के प्रकार

कल्पोपपन्ना: कल्पातीताश्च ॥17॥

अन्वयार्थ : वे दो प्रकार के हैं -- कल्पोपपन्न और कल्पातीत ।

कल्पादि का स्थान-क्रम

उपर्युपरि ॥18॥

अन्वयार्थ : ये कल्पादि क्रमश: ऊपर ऊपर हैं ।

स्वर्गों के नाम

सौधर्मेशान-सानत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ट-शुक्र-महाशुक्र-शतार-सहस्रारेष्वानतप्राणत-योरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय-वैजयन्त जयन्तापराजितेषु सर्वार्थ-सिद्धौ च ॥19॥

अन्वयार्थ : सौधर्म-ऐशान, सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, शतार-सहस्रार, आनत-प्राणत, आरण-अच्युत आठ स्वर्गों के युगलों में देवों के निवास-स्थान विमान हैं तथा नौ ग्रैवेयक, (र्नवसु) नौ अनुदिश, विजय, वैजयंत, जयन्त और अपराजित और सर्वाथसिद्धि अनुत्तर-विमानों मे अहमिन्द्र कल्पातीत-देव रहते हैं ।

ऊपर के देवों में वृद्धि

स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-लेश्याविशुद्धीन्द्रियावधि-विषय-तोऽधिका: ॥20॥

अन्वयार्थ : ऊपर-ऊपर के देवों की आयु, प्रभाव, सुख, कांति, लेश्या, विशुद्धि, इन्द्रिय-विषय और अवधिज्ञान के विषय क्रमश उत्तरोत्तर वृद्धिंगत होते हैं ।

ऊपर के देवों में हीनता

गति-शरीर-परिग्रहाभिमानतो हीना: ॥21॥

अन्वयार्थ : नीचे के स्वर्गों से ऊपर-ऊपर के स्वर्गों के देवों में गति, शरीर, परिग्रह, अभिमान क्रमश हीन-हीन होता है ।

वैमानिक देवों में लेश्या

पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्या द्वि-त्रि-शेषेषु ॥22॥

अन्वयार्थ : प्रथम दो युगलों में, तीन युगलों में और शेष समस्त विमानों में देवों की क्रमश पीत, पद्म और शुक्ल लेश्याएं होती हैं ।

कल्पवासी देव

प्राग्ग्रैवेयकेभ्य: कल्पा: ॥23॥

अन्वयार्थ : ग्रैवेयकों से पहिले अर्थात १६वें स्वर्ग तक कल्प कहते है क्योकि वहीं तक के देवों में इन्द्रादिक दस-भेदों की कल्पना है ।

लौकांतिक देव

ब्रह्म-लोकालया लौकान्तिका: ॥24॥

अन्वयार्थ : ब्रह्म-लोक (पांचवे स्वर्ग) के निवासी देव लौकांतिक देव कहलाते हैं ।

लौकांतिक देवों के भेद

सारस्वतादित्य वह्न्यरुण-गर्दतोय-तुषिताव्या-बाधारिष्टाश्च ॥25॥

अन्वयार्थ : लौकांतिक देवों के सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अरिष्ट आठ भेद नाम हैं । यहाँ च से सूचित होता है कि प्रत्येक के बीच २-२ लौकांतिक देव और हैं ।

दो भवधारी देव

विजयादिषु द्वि-चरमा: ॥26॥

अन्वयार्थ : नव अनुदिश के नौ और ४ अनुत्तरों; विजय ,वैजयंत,जयंत, अपराजित के देव उत्कृष्टता से दो भवधारी होते हैं ।

तिर्यंच-योनी

औपपादिक-मनुष्येभ्य: शेषास्तिर्यग्योनय: ॥27॥

अन्वयार्थ : उपपाद जन्म वाले देवों, नारकियों और मनुष्यों के अतिरिक्त सभी तिर्यंच-योनी के जीव हैं ।

भवनवासी देवों में उत्कृष्ट आयु

स्थितिरसुर-नाग-सुपर्ण-द्वीपशेषाणां-सागरोपम-त्रिपल्योपमार्द्धहीन-मिता: ॥28॥

अन्वयार्थ : भवनवासी देवों में असुरकुमार की आयु १ सागर, नाग कुमार की ३ पल्य, सुपर्ण कुमार की २.५ पल्य, द्वीप कुमार की २ पल्य तथा शेष छ देवौं (विद्युतकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनिक कुमार, उदधि कुमार और दिक्कुमार) की १.५ पल्य है ।

सौधर्म-ऐशान स्वर्गों में उत्कृष्ट आयु

सौधर्मेशानयो: सागरोपमेऽधिके ॥29॥

अन्वयार्थ : सौधर्म और ऐशान स्वर्गों के देवों की उत्कृष्ट आयु दो सागर से कुछ अधिक है ।

सानत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्गों में उत्कृष्ट आयु

सानत्कुमार-माहेन्द्रयो: सप्त ॥30॥

अन्वयार्थ : सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गों में देवों की उत्कृष्ट-आयु सात सागर है ।

१४वें स्वर्ग तक देवों की उत्कृष्ट आयु

त्रिसप्त-नवैकादश-त्रयोदश-पञ्चदशभिरधिकानि तु ॥31॥

अन्वयार्थ : तीसरे युगल, (ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर) में १० सागर चौथे युगल (लांतव-कापिष्ट) में १४ सागर, पांचवे युगल (शुक्र-महाशुक्र) में १६ सागर, छठे युगल (शतार-सहस्रार) में १८ सागर, सातवें युगल (आणत-प्राणत) में २० सागर और आठवे युगल (आरण-अच्युत) में देवों की उत्कृष्टायु आयु २२ सागर है ।

कल्पातीत देवों में उत्कृष्ट आयु

आरणाच्युता-दूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥32॥

अन्वयार्थ : आरण और अच्युत स्वर्गों के आठवें युगल से ऊपर नव-अनुदिश ,और विजयादि चार अनुत्तरों और सर्वार्थसिद्धि में देवों की उत्कृष्ट आयु क्रमश १-१ सागर वृद्धिंगत है ।

सौधर्म-ऐशान में जघन्य आयु

अपरा पल्योपममधिकम् ॥33॥

अन्वयार्थ : सौधर्म और ऐशान स्वर्ग में देवों की जघन्यायु एक पल्य है ।

स्वर्ग युगलों में आयु सम्बंधित नियम

परत: परत: पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा ॥34॥

अन्वयार्थ : स्वर्गों में अगले स्वर्ग युगल के देवों की जघन्यायु पहिले-पहिले स्वर्ग युगल के देवों के उत्कृष्टायु से एक समय अधिक है ।

नरकों में आयु सम्बंधित नियम

नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥35॥

अन्वयार्थ : द्वितीय आदि नरकों में नारकियों की जघन्य स्थिति पूर्व-पूर्व के नारकियों की उत्कृष्ट स्थिति के समान है ।

प्रथम नरक में जघन्य आयु

दश-वर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥36॥

अन्वयार्थ : प्रथम नरक में नारकी की जघन्यायु दस हज़ार वर्ष है ।

भवनवासी देवों की जघन्य आयु

भवनेषु च ॥37॥

अन्वयार्थ : भवनवासी देवों की जघन्यायु भी १० हज़ार वर्ष है ।

व्यन्तर देवों की जघन्य आयु

व्यन्तराणां च ॥38॥

अन्वयार्थ : व्यन्तर देवों की भी दस हज़ार वर्ष जघन्यायु है ।

व्यन्तर-देवों की उत्कृष्ट आयु

परा पल्योपममधिकम् ॥39॥

अन्वयार्थ : व्यन्तर-देवों की उत्कृष्टायु पल्य से कुछ अधिक है ।

ज्योतिष्क देवों की उत्कृष्ट आयु

ज्योतिष्काणां च ॥40॥

अन्वयार्थ : ज्योतिष्क देवों की भी उत्कृष्टायु १ पल्य से कुछ अधिक होती है ।

ज्योतिष्क देवों में जघन्य आयु

तदष्टभागोऽपरा ॥41॥

अन्वयार्थ : ज्योतिष्क देवों में जघन्यायु एक पल्य का आठवा भाग है ।

लौकांतिक देवों की आयु

लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥42॥

अन्वयार्थ : लौकांतिक देवों की एक समान जघन्यायु और उत्कृष्टायु ८ सागर प्रमाण ही है ।

अजीव के भेद

अजीव-काया-धर्माधर्माकाश-पुद्गला: ॥1॥

अन्वयार्थ : धर्म, अधर्म, आकाश, और पुद्गल अजीव (चेतना रहित) और कायावान (बहु प्रदेशी) है ।

इनकी संज्ञा

द्रव्याणि ॥2॥

अन्वयार्थ : यह (धर्म, अधर्म, आकाश, और पुद्गल) द्रव्य हैं ।

जीव भी द्रव्य

जीवाश्च ॥3॥

अन्वयार्थ : जीव भी द्रव्य है ।

द्रव्यों के बारे में विशेष

नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥4॥

अन्वयार्थ : (ऊपर कहे हुए सभी द्रव्य) नित्य (अविनाशी) है, अवस्थित (संख्या निश्चित है), अन्यरूपाणि (चक्षु इन्द्रिय से देखे नहीं जा सकते / अरूपी) हैं ।

रूपी द्रव्य

रूपिण: पुद्गला: ॥5॥

अन्वयार्थ : पुद्गल द्रव्य रूपी (मूर्तिक) है ।

द्रव्यों में संख्या

आ आकाशादेक-द्रव्याणि ॥6॥

अन्वयार्थ : आकाशपर्यन्त सभी द्रव्य (धर्म, अधर्म और आकाश) १-१ हैं ।

क्रिया

निष्क्रियाणि च ॥7॥

अन्वयार्थ : और (धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनों द्रव्य) निष्क्रिय (क्रियारहित) हैं ।

प्रदेश

असंख्येया: प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥8॥

अन्वयार्थ : धर्म, अधर्म और एक जीवद्रव्य के असंख्यात-असंख्यात प्रदेश होते हैं ।

आकाश के प्रदेश

आकाशस्यानन्ता: ॥9॥

अन्वयार्थ : आकाश के अनंत प्रदेश हैं ।

पुद्गल के प्रदेश

संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥10॥

अन्वयार्थ : पुद्गल के संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रदेश होते हैं ।

परमाणु के प्रदेश

नाणो: ॥11॥

अन्वयार्थ : पुद्गल परमाणु एकप्रदेशी ही है ।

आधार

लोकाकाशेऽवगाह: ॥12॥

अन्वयार्थ : इन द्रव्यों का अवगाहन लोकाकाश में है ।

उदाहरण

धर्माधर्मयो: कृत्स्ने ॥13॥

अन्वयार्थ : धर्म और अधर्म द्रव्य सम्पूर्ण लोकाकाश में तिल में तेल के समान व्याप्त है ।

पुद्गलों का अवगाह

एकप्रदेशादिषु भाज्य: पुद्गलानाम् ॥14॥

अन्वयार्थ : पुद्गलों का अवगाह लोकाकाश के एक प्रदेश आदि में विकल्प से होता है ॥१४॥

जीवों का अवगाह

असंख्येय-भागादिषु जीवानाम् ॥15॥

अन्वयार्थ : लोकाकाश के असंख्यातवें भाग आदि में जीवों का अवगाह है ॥१५॥

जीव के अवगाह का नियम

प्रदेश-संहार-विसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥16॥

अन्वयार्थ : क्योंकि प्रदीप के समान जीव के प्रदेशों का संकोच और विस्तार होने के कारण लोकाकाश के असंख्येयभागादिक में जीवों का अवगाह बन जाता है॥१६॥

धर्म और अधर्म द्रव्य का उपकार

गति-स्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकार: ॥17॥

अन्वयार्थ : गति और स्थिति में निमित्त होना यह क्रम से धर्म और अधर्म द्रव्य का उपकार है ॥१७॥

आकाश द्रव्य का उपकार

आकाशस्या-वगाह: ॥18॥

अन्वयार्थ : आवगाहन देना आकाश द्रव्य का उपकार है ॥१८॥

पुद्गल द्रव्य का उपकार

शरीरवाङ्मन:-प्राणापाना पुद्गलानाम् ॥19॥

अन्वयार्थ : शरीर,वचन, मन और प्राणापान -- यह पुद्गलों का उपकार है ॥१९॥

पुद्गल का अन्य उपकार

सुख-दु:ख-जीवितमरणोपग्रहाश्च ॥20॥

अन्वयार्थ : सुख, दु:ख जीवित और मरण ये भी पुद्गलों के उपकार हैं ॥२०॥

जीव द्रव्य का उपकार

परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥21॥

अन्वयार्थ : परस्पर निमित्त होना यह जीवों का उपकार है ॥२१॥

काल द्रव्य के उपकार

वर्तना-परिणाम-क्रिया-परत्वापरत्वे च कालस्य ॥22॥

अन्वयार्थ : वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व ये काल के उपकार हैं ॥२२॥

पुद्गल के गुण

स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्त: पुद्गला: ॥23॥

अन्वयार्थ : स्पर्श, रस, गन्ध और वर्णवाले पुद्गल होते हैं ॥२३॥

पुद्गल की पर्याय

शब्द-बंध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमश्छायातपोद्योतवन्तश्च ॥24॥

अन्वयार्थ : तथा वे शब्द, बन्ध, सूक्ष्मत्व, स्थूलत्व, संस्थान, भेद, अन्धकार, छाया, आतप और उद्योत वाले होते हैं ॥२४॥

पुद्गल के भेद

अणव: स्कन्धाश्च ॥25॥

अन्वयार्थ : पुद्गल के दो भेद हैं - अणु और स्कन्ध ॥२५॥

स्कन्ध की उत्पत्ति

भेद-संघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥26॥

अन्वयार्थ : भेद से, संघात से तथा भेद और संघात दोनों से स्कन्ध उत्पन्न होते हैं ॥२६॥

अणु की उत्पत्ति

भेदादणु: ॥27॥

अन्वयार्थ : भेद से अणु उत्पन्न होता है ॥२७॥

स्कन्ध की उत्पत्ति का विशेष

भेद-संघाताभ्यां चाक्षुष: ॥28॥

अन्वयार्थ : भेद और संघात से चाक्षुष स्कन्ध बनता है ॥२८॥

द्रव्य का लक्षण

सद् द्रव्य-लक्षणम् ॥29॥

अन्वयार्थ : द्रव्य का लक्षण सत् है ॥२९॥

सत् का लक्षण

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं सत् ॥30॥

अन्वयार्थ : जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीनों से युक्त अर्थात् इन तीनों रूप है वह सत् है ॥३०॥

नित्य का स्वरूप

तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥31॥

अन्वयार्थ : उसके भाव से (अपनी जाति से) च्युत न होना नित्य है ॥३१॥

विरोधी धर्म एक साथ कैसे?

अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥32॥

अन्वयार्थ : मुख्यता और गौणता की अपेक्षा एक वस्तु में विरोधी मालूम पड़ने वाले दो धर्मों की सिद्धि होती है ॥३२॥

पुद्गल में बंध

स्निग्ध-रूक्षत्वाद् बन्धः ॥33॥

अन्वयार्थ : स्निग्धत्व और रूक्षत्व से बन्ध होता है ॥३३॥

बन्ध न होने का नियम

न जघन्य-गुणानाम् ॥34॥

अन्वयार्थ : जघन्य गुणवाले पुद्गलों का बन्ध नहीं होता ॥३४॥

और भी

गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥35॥

अन्वयार्थ : गुणों की समानता होने पर तुल्य जातिवालों का बन्ध नहीं होता ॥३५॥

बन्ध का नियम

द्वयधिकादि गुणानां तु ॥36॥

अन्वयार्थ : दो अधिक आदि शक्त्यंशवालों का तो बन्ध होता है ॥३६॥

परिणमन का नियम

बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥37॥

अन्वयार्थ : बन्ध होते समय दो अधिक गुणवाला परिणमन करानेवाला होता है ॥३७॥

द्रव्य का और लक्षण

गुण-पर्ययवद् द्रव्यम् ॥38॥

अन्वयार्थ : गुण और पर्यायवाला द्रव्य है॥३८॥

काल द्रव्य

कालश्च ॥39॥

अन्वयार्थ : काल भी द्रव्य है ॥३९॥

व्यवहार काल का प्रमाण

सोऽनन्तसमय: ॥40॥

अन्वयार्थ : वह अनन्त समयवाला है ॥४०॥

गुण का लक्षण

द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा: ॥41॥

अन्वयार्थ : जो निरन्तर द्रव्य में रहते हैं और गुणरहित हैं वे गुण हैं ॥४१॥

परिणाम

तद्भाव: परिणाम: ॥42॥

अन्वयार्थ : उसका होना अर्थात् प्रति समय बदलते रहना परिणाम है ॥४२॥

योग

काय-वाङ्मन: कर्म-योग: ॥1॥

अन्वयार्थ : काय, वचन और मन की क्रिया योग है ॥१॥

आस्रव

स आस्रव: ॥2॥

अन्वयार्थ : वही आस्रव है ॥२॥

भेद - पुण्य-पाप

शुभ: पुण्यस्याशुभ: पापस्य ॥3॥

अन्वयार्थ : शुभयोग पुण्य का और अशुभयोग पाप का आस्रव है ॥३॥

आस्रव के कर्ता की अपेक्षा भेद

सकषायाकषाययो: साम्परायिकेर्यापथयो: ॥4॥

अन्वयार्थ : कषायसहित और कषायरहित आत्मा का योग क्रम से साम्परायिक और ईर्यापथ कर्म के आस्रवरूप है ॥४॥

साम्परायिक आस्रव के भेद

इन्द्रिय-कषायाव्रत-क्रिया: पंच-चतु:-पंच-पंचविंशति-संख्या: पूर्वस्य भेदा: ॥5॥

अन्वयार्थ : पूर्व के अर्थात् साम्परायिक कर्मास्रव के इन्द्रिय, कषाय, अव्रत और क्रियारूप भेद हैं जो क्रम से पाँच, चार, पाँच और पच्चीस हैं ॥५॥

आस्रव में विशेषता

तीव्र-मंद-ज्ञाताज्ञात-भावाधिकरण-वीर्य-विशेषेभ्यस्तद्विशेष: ॥6॥

अन्वयार्थ : तीव्र-भाव, मन्द-भाव, ज्ञात-भाव, अज्ञात-भाव, अधिकरण-विशेष और वीर्य-विशेष के भेद से उसकी (आस्रव की) विशेषता

होती है ॥६॥

आस्रव का अधिकरण

अधिकरणं जीवाजीवा: ॥7॥

अन्वयार्थ : अधिकरण जीव और अजीवरूप हैं ॥७॥

जीवाधिकरण

आद्यं संरम्भ-समारम्भारम्भयोग कृत-कारितानुमत-कषाय-विशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रि-श्चतुश्चैकश: ॥8॥

अन्वयार्थ : पहला जीवाधिकरण संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ के भेद से तीन प्रकार का, योगों के भेद से तीन प्रकार का; कृत, कारित और अनुमत के भेद से तीन प्रकार का तथा कषायों के भेद से चार प्रकार का होता हुआ परस्पर मिलाने से एक सौ आठ प्रकार का है ॥८॥

अजीवाधिकरण

निर्वर्तना-निक्षेप-संयोग-निसर्गा द्विचतुर्द्वि-त्रिभेदा: परम् ॥9॥

अन्वयार्थ : पर अर्थात् अजीवाधिकरण क्रम से दो, चार, दो और तीन भेदवाले निर्वर्तना, निक्षेप, संयोग और निसर्गरूप है ॥९॥

ज्ञान-दर्शनावरण के आस्रव

तत्प्रदोष-निह्नव-मात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञान-दर्शनावरणयो: ॥10॥

अन्वयार्थ : ज्ञान और दर्शन के विषय में प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन और उपघात ये ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्रव हैं ॥१०॥

असाता वेदनीय कर्म के आस्रव

दु:ख-शोक-तापाक्रन्दन-वध-परिदेवनान्यात्म-परोभय-स्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥11॥

अन्वयार्थ : अपने में, दूसरे में या दोनों में विद्यमान दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिदेवन ये असाता वेदनीय कर्म के आस्रव हैं ॥ ११ ॥

सातावेदनीय कर्म के आस्रव

भूत-व्रत्यनुकम्पादान-सराग-संयमादि-योग: क्षांति: शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥12॥

अन्वयार्थ : भूत-अनुकम्पा, व्रती-अनुकम्पा, दान और सरागसंयम आदि का योग तथा क्षान्ति और शौच ये सातावेदनीय कर्म के आस्रव हैं ॥१२॥

दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव

केवलि-श्रुत-संघ-धर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥13॥

अन्वयार्थ : केवली, श्रुत, संघ, धर्म और देव इनका अवर्णवाद दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव है ॥१३॥

चारित्रमोहनीय का आस्रव

कषायोदयात्तीव्र-परिणामश्चारित्र-मोहस्य ॥14॥

अन्वयार्थ : कषाय के उदय से होने वाला तीव्र आत्मपरिणाम चारित्रमोहनीय का आस्रव है ॥१४॥

नारकायु का आस्रव

बह्वारम्भ-परिग्रहत्वं नारकस्यायुष: ॥15॥

अन्वयार्थ : बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रहपने का भाव नारकायु का आस्रव है ॥१५॥

माया तिर्यंचायु का आस्रव

माया तैर्यग्योनस्य ॥16॥

अन्वयार्थ : माया तिर्यंचायु का आस्रव है ॥१६॥

मनुष्यायु का आस्रव

अल्पारम्भ परिग्रहत्वं मानुषस्य ॥17॥

अन्वयार्थ : अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रहपने का भाव मनुष्यायु के आस्रव हैं ॥१७॥

मनुष्यायु का और भी आस्रव

स्वभाव-मार्दवं च ॥18॥

अन्वयार्थ : स्वभाव की मृदुता भी मनुष्यायु का आस्रव है ॥१८॥

सब आयुओं का आस्रव

नि:शील-व्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥19॥

अन्वयार्थ : शीलरहित और व्रतरहित होना सब आयुओं का आस्रव है ॥१९॥

देवायु के आस्रव

सरागसंयम-संयमा-संयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥20॥

अन्वयार्थ : सरागसंयम, संयमासंयम, अकामनिर्जरा और बालतप ये देवायु के आस्रव हैं ॥२०॥

देवायु का और भी आस्रव

सम्यक्त्वं च ॥21॥

अन्वयार्थ : सम्यक्त्व भी देवायु का आस्रव है ॥२१॥

अशुभ नाम कर्म के आस्रव

योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्न: ॥22॥

अन्वयार्थ : योगवक्रता और विसंवाद ये अशुभ नाम कर्म के आस्रव हैं ॥२२॥

शुभ नामकर्म के आस्रव

तद्विपरीतं शुभस्य ॥23॥

अन्वयार्थ : उससे विपरीत अर्थात् योग की सरलता और अविसंवाद ये शुभनामकर्म के आस्रव हैं ॥२३॥

तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता-शील-व्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्याग-तपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्य-करणमर्हदाचार्य-बहुश्रुत-प्रवचन-भक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्ग-प्रभावना-प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥24॥

अन्वयार्थ : दर्शनविशुद्धि, विनयसंपन्नता, शील और व्रतों का अतिचार रहित पालन करना, ज्ञान में सतत उपयोग, सतत संवेग, शक्ति के अनुसार त्याग, शक्ति के अनुसार तप, साधु-समाधि, वैयावृत्त्य करना, अरिहंतभक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति,

आवश्यक क्रियाओं को न छोड़ना, मोक्षमार्ग की प्रभावना और प्रवचनवात्सल्य ये तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव हैं ॥२४॥

नीचगोत्र के आस्रव

परात्म-निन्दा-प्रशंसे सदसद् गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥25॥

अन्वयार्थ : परनिंदा, आत्मप्रशंसा, सद्गुणों का उच्छादन और असद्गुणों का उद्भावन ये नीचगोत्र के आस्रव हैं ॥२५॥

उच्च गोत्र के आस्रव

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥26॥

अन्वयार्थ : उनका विपर्यय अर्थात् परप्रशंसा, आत्मनिन्दा, सद्गुणों का उद्भावन और असद्गुणों का उच्छादन तथा नम्रवृत्ति और अनुत्सेक ये उच्च गोत्र के आस्रव हैं ॥२६॥

अन्तराय कर्म का आस्रव

विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥27॥

अन्वयार्थ : दानादिक में विघ्न डालना अन्तराय कर्म का आस्रव है ॥२७॥

व्रत

हिंसाऽनृत-स्तेयाब्रह्म-परिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥1॥

अन्वयार्थ : हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह से विरत होना व्रत है ॥१॥

व्रती के भेद

देश सर्वतोऽणु-महती ॥2॥

अन्वयार्थ : हिंसादिक से एकदेश निवृत्त होना अणुव्रत है और सब प्रकार से निवृत्त होना महाव्रत है ॥२॥

प्रत्येक व्रत की भावनाएँ

तत्स्थैर्यार्थं भावना: पञ्च-पञ्च ॥3॥

अन्वयार्थ : उन व्रतों को स्थिर करने के लिए प्रत्येक व्रत की पाँच पाँच भावनाएँ हैं ॥३॥

अहिंसाव्रत की भावनाएँ

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपण-समित्यालोकित-पान-भोजनानि पञ्च ॥4॥

अन्वयार्थ : वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्यासमिति, आदाननिक्षेपणसमिति और आलोकितपान-भोजन ये अहिंसाव्रत की पाँच भावनाएँ हैं ॥४॥

सत्य व्रत की भावनाएँ

क्रोध-लोभ-भीरुत्व-हास्य-प्रत्याख्यानान्यनुवीचि-भाषणं च पञ्च ॥5॥

अन्वयार्थ : क्रोधप्रत्याख्यान, लोभप्रत्याख्यान, भीरुत्वप्रत्याख्यान, हास्यप्रत्याख्यान और अनुवीचीभाषण ये सत्य व्रत की पाँच भावनाएँ हैं ॥५॥

अचौर्य व्रत की भावनाएँ

शून्यागार-विमोचितावास-परोपरोधाकरण-भैक्ष्यशुद्धि-सधर्मावि-संवादा: पञ्च ॥6॥

अन्वयार्थ : शून्यागारवास, विमोचितावास, परोपरोधाकरण, भैक्षशुद्धि और सधर्माविसंवाद ये अचौर्य व्रत की पाँच भावनाएँ हैं ॥६॥

ब्रह्मचर्य व्रत की भावनाएँ

स्त्रीरागकथा श्रवण-तन्मनोहरांग निरीक्षण पूर्व-रतानुस्मरण-वृष्येष्टरस-स्वशरीरसंस्कारत्यागा: पञ्च ॥7॥

अन्वयार्थ : स्त्रियों में राग को पैदा करने वाली कथा के सुनने का त्याग, स्त्रियों के मनोहर अंगों को देखने का त्याग, पूर्व भोगों के स्मरण का त्याग, गरिष्ठ और इष्ट रस का त्याग तथा अपने शरीर के संस्कार का त्याग ये ब्रह्मचर्य व्रत की पाँच भावनाएँ हैं ॥७॥

अपरिग्रह व्रत की भावनाएँ

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रिय-विषय-राग-द्वेष वर्जनानि पञ्च ॥8॥

अन्वयार्थ : पांचों इन्द्रियों के मनोज्ञ (प्रिय) और अमनोज्ञ (अप्रिय) विषयों में क्रम से राग और द्वेष का त्याग करना ये अपरिग्रहव्रत की पाँच भावनाएँ हैं ॥८॥

पाप से विमुखता के लिए भावनाएं

हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥9॥

अन्वयार्थ : हिंसादिक पाँच दोषों में ऐहिक और पारलौकिक अपाय और अवद्य का दर्शन भावने योग्य है ॥९॥

और भी

दु:खमेव वा ॥10॥

अन्वयार्थ : अथवा हिंसादिक दुःख ही हैं ऐसी भावना करनी चाहिए ॥१०॥

परस्पर जीवों के साथ भावनाएं

मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थानि च सत्त्व-गुणाधिक-क्लिश्यमानाविनयेषु ॥11॥

अन्वयार्थ : प्राणीमात्र में मैत्री, गुणाधिकों में प्रमोद, क्लिश्यमानों में करुणा वृत्ति और अविनयों में माध्यस्थ्य भावना करनी चाहिए ॥११॥

संसार और शरीर के लिए भावना

जगत्काय-स्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ॥12॥

अन्वयार्थ : संवेग और वैराग्य के लिए जगत् के स्वभाव और शरीर के स्वभाव की भावना करनी चाहिए ॥१२॥

हिंसा का लक्षण

प्रमत्तयोगात्प्राण-व्यपरोपणं हिंसा ॥13॥

अन्वयार्थ : प्रमत्तयोग से प्राणों का वियोग करना हिंसा है ॥१३॥

झूठ का लक्षण

असदभिधानमनृतम् ॥14॥

अन्वयार्थ : अप्रशस्त बोलना अनृत है ॥१४॥

चोरी का लक्षण

अदत्तादानं स्तेयम् ॥15॥

अन्वयार्थ : बिना दी हुई वस्तु का ग्रहण स्तेय है ॥१५॥

कुशील का लक्षण

मैथुनम-ब्रह्म ॥16॥

अन्वयार्थ : मैथुन कर्म अब्रह्म है ॥१६॥

परिग्रह का लक्षण

मूर्च्छा परिग्रह: ॥17॥

अन्वयार्थ : मूर्च्छा परिग्रह है ॥१७॥

व्रती का लक्षण

नि:शल्यो व्रती ॥18॥

अन्वयार्थ : जो शल्यरहित है वह व्रती है ॥१८॥

व्रती के भेद

अगार्यनगारश्च ॥19॥

अन्वयार्थ : उसके अगारी और अनागार ये दो भेद हैं ॥१९॥

श्रावक

अणुव्रतोऽगारी ॥20॥

अन्वयार्थ : अणुव्रतों का धारी अगारी है ॥२०॥

श्रावक के और भी व्रत

दिग्देशानर्थदण्ड-विरति-सामायिक-प्रोषधोपवासोपभोग-परिभोग-परिमाणातिथि-संविभागव्रतसम्पन्नश्च ॥21॥

अन्वयार्थ : वह दिग्विरति, देशविरति, अनर्थदण्डविरति, सामायिकव्रत, प्रोषधोपवासव्रत, उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रत और अतिथिसंविभागव्रत इन व्रतों से भी सम्पन्न होता है ॥२१॥

सल्लेखना

मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥22॥

अन्वयार्थ : तथा वह मारणान्तिक संलेखना का प्रीतिपूर्वक सेवन करने वाला होता है ॥२२॥

सम्यक्त्व के पांच अतिचार

शंका-कांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टि-प्रशंसा-संस्तवा: सम्यग्दृष्टेरती-चारा: ॥23॥

अन्वयार्थ : शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा और अन्यदृष्टिसंस्तव ये सम्यग्दष्टि के पाँच अतिचार हैं ॥२३॥

व्रत और शील के अतिचार

व्रत-शीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥24॥

अन्वयार्थ : व्रतों और शीलों में पाँच पाँच अतिचार हैं जो क्रम से इस प्रकार हैं ॥२४॥

अहिंसा अणुव्रत के अतिचार

बंधवध-च्छेदाति-भारारोपणान्नपान-निरोधा: ॥25॥

अन्वयार्थ : बन्ध, वध, छेद, अतिभार का आरोपण और अन्नपान का निरोध ये अहिंसा अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२५॥

सत्याणुव्रत के अतिचार

मिथ्योपदेश-रहोभ्याख्यान-कूटलेखक्रिया-न्यासापहार-साकारमन्त्रभेदा: ॥26॥

अन्वयार्थ : मिथ्योपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार और साकारमंत्रभेद ये सत्याणुव्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२६॥

अचौर्य अणुव्रत के अतिचार

स्तेनप्रयोग-तदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रम-हीनाधिकमानोन्मान-प्रतिरूपक-व्यवहारा: ॥27॥

अन्वयार्थ : स्तेनप्रयोग, स्तेन आहृतादान, विरूद्धराज्यातिक्रम, हीनाधिक मानोन्मान और प्रतिरुपक व्यवहार ये अचौर्य अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२७॥

स्वदारसंतोष अणुव्रत के अतिचार

परविवाह करणेत्वरिका-परिगृहीतापरिगृहीता-गमनानङ्गक्रीडा-कामतीव्राभिनिवेशा: ॥28॥

अन्वयार्थ : परविवाहकरण, इत्वरिकापरिगृहीतागमन, इत्वारिका-अपरिगृहीतागमन, अनंगक्रीडा़ और कामतीव्राभिनिवेश ये स्वदारसंतोष अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२८॥

परिग्रहपरिमाण अणुव्रत के अतिचार

क्षेत्रवास्तु-हिरण्यसुवर्ण-धन-धान्य-दासीदास-कुप्य-प्रमाणातिक्रमा: ॥29॥

अन्वयार्थ : क्षेत्र और वास्तु के प्रमाण का अतिक्रम, हिरण्य और सुवर्ण के प्रमाण का अतिक्रम, धन और धान्य के प्रमाण का अतिक्रम,दासी और दास के प्रमाण का अतिक्रम तथा कुप्य के प्रमाण का अतिक्रम ये परिग्रहपरिमाण अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं ॥२९॥

दिग्विरतिव्रत के अतिचार

ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धि-स्मृत्यंतराधानानि ॥30॥

अन्वयार्थ : ऊर्ध्वव्यतिक्रम, अधोव्यतिक्रम, तिर्यग्व्यतिक्रम, क्षेत्रवृद्धि और स्मृत्यन्तराधान ये दिग्विरतिव्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३०॥

देशविरति के अतिचार

आनयन-प्रेष्यप्रयोग-शब्दरूपानुपात-पुद्गलक्षेपा: ॥31॥

अन्वयार्थ : आनयन, प्रेष्यप्रयोग, शब्दानुपात, रूपानुपात और पुद्गलक्षेप ये देशविरति के पाँच अतिचार हैं ॥३१॥

अनर्थदण्डविरति के अतिचार

कन्दर्प-कौत्कुच्य-मौखर्यासमीक्ष्याधि-करणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥32॥

अन्वयार्थ : कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, असमीक्ष्याधिकरण और उपभोगपरिभोगानर्थक्य ये अनर्थदण्डविरति व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३२॥

सामायिक व्रत के अतिचार

योग दु:प्रणिधानानादर-स्मृत्यनु-पस्थानानि ॥33॥

अन्वयार्थ : काययोगदुष्प्रणिधान, वचनयोगदुष्प्रणिधान, मनोयोगदुष्प्रणिधान, अनादर और स्मृति का अनुपस्थान ये सामायिक व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३३॥

प्रोषधोपवास के अतिचार

अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणा-नादरस्मृत्यनुप-स्थानानि ॥34॥

अन्वयार्थ : अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित भूमि में उत्सर्ग, अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित वस्तु का आदान, अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित संस्तर का उपक्रमण, अनादर और स्मृति का अनुपस्थान ये प्रोषधोपवास व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३४॥

उपभोग-परिभोग-परिमाण व्रत के अतिचार

सचित्त-संबंधसम्मिश्रा-भिषवदु:पक्वाहारा: ॥35॥

अन्वयार्थ : सचित्ताहार, सम्बन्धाहार, सम्मिश्राहार, अभिषवाहार और दु:पक्वाहार ये उपभोग-परिभोग-परिमाण व्रत के पाँच अतिचार हैं ॥३५॥

अतिथिसंविभाग व्रत के अतिचार

सचित्त-निक्षेपापिधानपरव्यपदेश-मात्सर्यकालातिक्रमा: ॥36॥

अन्वयार्थ : सचित्तनिक्षेप, सचित्तापिधान, परव्यपदेश, मात्सर्य और कालातिक्रम ये अतिथिसंविभाग व्रत के पाँच अतिचार है ॥३६॥

सल्लेखना के अतिचार

जीवित-मरणाशंसा-मित्रानुराग-सुखानुबंध-निदानानि ॥37॥

अन्वयार्थ : जीविताशंसा, मरणाशंसा, मित्रानुराग, सुखानुबन्ध और निदान ये सल्लेखना के पाँच अतिचार हैं ॥३७॥

दान

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥38॥

अन्वयार्थ : अनुग्रह के लिए अपनी वस्तुका त्याग करना दान हैं ॥३८॥

दान में विशेषता

विधि-द्रव्य-दातृ-पात्र-विशेषात्तद्विशेष: ॥39॥

अन्वयार्थ : विधि, देय वस्तु, दाता और पात्र की विशेषता से उसकी विशेषता है ॥३९॥

बंध के हेतु

मिथ्यादर्शनाविरति-प्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतव: ॥1॥

अन्वयार्थ : मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बंध के हेतु हैं ॥१॥

बन्ध

सकषायत्वाज्जीव: कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बंध: ॥2॥

अन्वयार्थ : कषाय सहित होने से जीव कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है वह बन्ध है ॥२॥

बंध के भेद

प्रकृति स्थित्यनुभव-प्रदेशास्तद्विधय: ॥3॥

अन्वयार्थ : उसके प्रकृति, स्थिति, अनुभव और प्रदेश ये चार भेद हैं ॥३॥

प्रकृतिबन्ध के रूप

आद्यो ज्ञान-दर्शनावरणवेदनीय-मोहनीयायुर्नाम-गोत्रान्तराया: ॥4॥

अन्वयार्थ : पहला अर्थात प्रकृतिबन्ध ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तरायरूप है ॥४॥

मूल कर्म प्रकृतियों के भेद

पञ्च-नव-द्वयष्टाविंशति-चतुर्-द्विचत्वारिंशद्-द्वि-पञ्च-भेदा-यथाक्रमम् ॥5॥

अन्वयार्थ : आठ मूल प्रकृतियों के अनुक्रम से पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, ब्यालीस, दो और पाँच भेद हैं ॥५॥

ज्ञानावरण कर्म के भेद

मतिश्रुतावधि-मन:पर्यय केवलानाम् ॥6॥

अन्वयार्थ : मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान इनको आवरण करने वाले कर्म पाँच ज्ञानावरण हैं ॥६॥

दर्शनावरण कर्म के भेद

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धयश्च ॥7॥

अन्वयार्थ : चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन इन चारों के चार आवरण तथा निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला और स्त्यानगृद्धि ये पाँच निद्राद्रिक ऐसे नौ दर्शनावरण है ॥७॥

वेदनीय कर्म के भेद

सदसद्वेद्ये ॥8॥

अन्वयार्थ : सद्वेद्य और असद्वेद्य ये दो वेदनीय हैं ॥८॥

मोहनीय कर्म के भेद

दर्शनचारित्र-मोहनीयाकषाय-कषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्वि-नव-षोडशभेदा: सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-तदुभयान्यकषाय-कषायौ हास्यरत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्री-पुन्नपुंसक-वेदा अनन्तानुबंध्य-प्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलन-विकल्पाश्चैकश: क्रोध-मान-माया-लोभा: ॥9॥

अन्वयार्थ : दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय, अकषायवेदनीय और कषाय वेदनीय इनके क्रम से तीन, दो, नौ और सोलह भेद हैं । सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और तदुभय ये तीन दर्शनमोहनीय हैं । अकषाय वेदनीय और कषायवेदनीय ये दो चारित्र-मोहनीय हैं । हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसकवेद ये नौ अकषावेदनीय हैं । तथा अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन ये प्रत्येक क्रोध, मान, माया और लोभ के भेद से सोलह कषायवेदनीय हैं ॥९॥

आयु कर्म के भेद

नारकतैर्यग्योन-मानुष-दैवानि ॥10॥

अन्वयार्थ : नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु ये चार आयु हैं ॥१०॥

नामकर्म के भेद

गति-जाति-शरीराङ्गोपाङ्गनिर्माण-बंधन-संघात-संस्थान-संहनन-स्पर्श-रस-गंध-वर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघात-परघातातपोद्योतोच्छ्वास-विहायोगतय: प्रत्येक-शरीर-त्रस-सुभग-सुस्वर-शुभ-सूक्ष्म-पर्याप्ति-स्थिरादेय यश: कीर्ति-सेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥11॥

अन्वयार्थ : गति, जाति, शरीर, अंगोपांग, निर्माण, बन्धन, संघात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, आनुपूर्व्य, अगुरूलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छवास, और विहायोगति तथा प्रतिपक्षभूत प्रकृतियों के साथ अर्थात् साधारण शरीर और प्रत्येक शरीर, स्थावर और त्रस, दुर्भग और सुभग, दु:स्वर और सुस्वर, अशुभ और शुभ, बादर और सूक्ष्म, अपर्याप्त और पर्याप्त, अस्थिर और स्थिर, अनादेय और आदेय, अयश:कीर्ति और यश:कीर्ति एवं तीर्थंकरत्व ये ब्यालीस नामकर्म के भेद हैं ॥११॥

गोत्रकर्म के भेद

उच्चैर्नीचैश्च ॥12॥

अन्वयार्थ : उच्चगोत्र और नीचगोत्र ये दो गोत्रकर्म हैं ॥१२॥

अन्तराय कर्म के भेद

दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणाम् ॥13॥

अन्वयार्थ : दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य इनके पाँच अन्तराय हैं ॥१३॥

मूल कर्मों में उत्कृष्ट स्थिति

आदितस्तिसृणा-मंतरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्य: परा स्थिति: ॥14॥

अन्वयार्थ : आदि की तीन प्रकृतियाँ अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और वेदनीय तथा अन्तराय इन चार की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटाकोटि सागरोपम है ॥१४॥

सप्तति-र्मोहनीयस्य ॥15॥

अन्वयार्थ : मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटाकोटि सागरोपम है ॥१५॥

विंशतिर्नाम-गोत्रयो: ॥116॥

अन्वयार्थ : नाम और गोत्र की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोटाकोटि सागरोपम है ॥१६॥

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुष: ॥17॥

अन्वयार्थ : आयु की उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम है॥१७॥

मूल कर्मों में जघन्य स्थिति

अपरा द्वादश मुहूर्ता वेदनीयस्य ॥18॥

अन्वयार्थ : वेदनीय की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त है ॥१८॥

नाम-गोत्रयोरष्टौ ॥19॥

अन्वयार्थ : नाम और गोत्र की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त है ॥१९॥

शेषाणामन्तर्मुहूर्ता ॥20॥

अन्वयार्थ : बाकी के पाँच कर्मों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है ॥२०॥

विपाक

विपाकोऽनुभव: ॥21॥

अन्वयार्थ : विपाक अर्थात् विविध प्रकार के फल देने की शक्ति का पड़ना ही अनुभव है ॥२१॥

विपाक का स्वभाव

स यथानाम् ॥22॥

अन्वयार्थ : वह जिस कर्म का जैसा नाम है उसके अनुरूप होता है ॥२२॥

निर्जरा

ततश्च निर्जरा ॥23॥

अन्वयार्थ : इसके बाद निर्जरा होती है॥२३॥

प्रदेश बन्ध

नाम-प्रत्यया: सर्वतो योग-विशेषात्-सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाह-स्थिता: सर्वात्म-प्रदेशेष्वनन्तानन्त-प्रदेशा: ॥24॥

अन्वयार्थ : कर्म प्रकृतियों के कारणभूत प्रतिसमय योगविशेष से सूक्ष्म, एकक्षेत्रावगाही और स्थित अनन्तानन्त पुद्गल परमाणु सब आत्मप्रदेशों में (सम्बन्ध को प्राप्त) होते हैं ॥२४॥

पुण्य प्रकृतियाँ

सद्वेद्यशुभायुर्नाम-गोत्राणि पुण्यम् ॥25॥

अन्वयार्थ : साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और शुभ गोत्र ये प्रकृतियाँ पुण्यरूप हैं ॥२५॥

पाप प्रकृतियाँ

अतोऽन्यत्पापम् ॥26॥

अन्वयार्थ : इनके सिवा शेष सब प्रकृतियाँ पापरूप हैं ॥२६॥

संवर

आस्रव-निरोध: संवर: ॥1॥

अन्वयार्थ : आस्रव का निरोध संवर है ॥१॥

संवर का कारण

स गुप्ति-समिति-धर्मानुप्रेक्षा-परीषहजय-चारित्रै: ॥2॥

अन्वयार्थ : वह संवर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषहजय और चारित्र से होता है ॥२॥

तप

तपसा निर्जरा च ॥3॥

अन्वयार्थ : तप से निर्जरा होती है और संवर भी होता है ॥३॥

गुप्ति

सम्यग्योगनिग्रहो गुप्ति: ॥4॥

अन्वयार्थ : योगों का सम्यक् प्रकार से निग्रह करना गुप्ति है ॥४॥

समिति

ईर्याभाषैषणा-दाननिक्षेपोत्सर्गा: समितय: ॥5॥

अन्वयार्थ : ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेप और उत्सर्ग ये पाँच समितियाँ हैं ॥५॥

धर्म

उत्तमक्षमा-मार्दवार्जव-शौच-सत्य-संयमतपस्त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्याणि धर्म: ॥6॥

अन्वयार्थ : उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य यह दस प्रकार का धर्म है ॥६॥

अनुप्रेक्षा

अनित्याशरण-संसारैकत्वान्य-त्वाशुच्यास्रवसंवर-निर्जरा-लोक-बोधिदुर्लभ-धर्म-स्वाख्यातत्त्वानु-चिन्तन-मनुप्रेक्षा: ॥7॥

अन्वयार्थ : अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्मस्वाख्याततत्व का बार-बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षाएँ हैं ॥७॥

परीषह जय का उद्देश्य

मार्गाच्यवन-निर्जरार्थं परिषोढव्या: परीषहा: ॥8॥

अन्वयार्थ : मार्ग से च्युत न होने के लिए और कर्मों की निर्जरा करने के लिए जो सहन करने योग्य हों वे परीषह हैं ॥८॥

परीषह के प्रकार

क्षुत्पिपासा-शीतोष्णदंशमशक-नाग्न्यारति-स्त्री-चर्या-निषद्या-शय्याक्रोशवधयाचनालाभ-रोग-तृणस्पर्श-मल-सत्कारपुरस्कार-प्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥9॥

अन्वयार्थ : क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नग्नता, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कारपुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन इन नाम वाले परीषह हैं ॥९॥

दसवें से बारहवें गुणस्थान में परीषह

सूक्ष्मसाम्पराय-छद्मस्थवीत-रागयोश्चतुर्दश ॥10॥

अन्वयार्थ : सूक्ष्मसाम्पराय (दसवें) और छद्मस्थ-वीतराग (ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थान) में चौदह परीषह होती हैं ॥१०॥

सयोग केवली के परीषह

एकादश जिने ॥11॥

अन्वयार्थ : जिन में ग्यारह परीषह सम्भव हैं ॥११॥

बादर साम्पराय गुणस्थान तक परीषह

बादर-साम्पराये सर्वे ॥12॥

अन्वयार्थ : बादर साम्पराय गुणस्थान तक सभी परीषह सम्भव हैं ॥१२॥

ज्ञानावरण से परीषह

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥13॥

अन्वयार्थ : ज्ञानावरण के सद्भाव में प्रज्ञा और अज्ञान, दो परीषह होती हैं ॥१३॥

दर्शनमोह और अन्तराय से परीषह

दर्शन-मोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ॥14॥

अन्वयार्थ : दर्शनमोह और अन्तराय के सद्भाव में क्रम से अदर्शन और अलाभ परीषह होते हैं ॥१४॥

चारित्रमोह से परीषह

चारित्रमोहे नाग्न्यारति-स्त्री-निषद्या-क्रोश-याचना-सत्कारपुरस्कारा: ॥15॥

अन्वयार्थ : चारित्रमोह के सद्भाव में नाग्न्य, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कारपुरस्कार परीषह होते हैं ॥१५॥

वेदनीय से परीषह

वेदनीये शेषा: ॥16॥

अन्वयार्थ : बाकी के सब परीषह वेदनीय के सद्भाव में होते हैं ॥१६॥

एक साथ एक जीव के परीषह

एकादयो भाज्या युगपदेक-स्मिन्नैकोनविंशते: ॥17॥

अन्वयार्थ : एक साथ एक जीव के उन्नीस परीषह तक होती हैं ॥१७॥

चारित्र के प्रकार

सामायिकच्छेदोपस्थापना-परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसाम्पराय-यथाख्यात-मितिचारित्रम् ॥18॥

अन्वयार्थ : सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात यह पाँच प्रकार का चारित्र है ॥१८॥

तप के प्रकार

अनशनावमौदर्य-वृत्तिपरिसंख्यान-रस-परित्याग-विविक्तशय्यासन-कायक्लेशा बाह्यं तप: ॥19॥

अन्वयार्थ : अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश यह छह प्रकार का बाह्य तप है ॥१९॥

आभ्यन्तर तप

प्रायश्चित्त-विनय-वैयावृत्त्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग-ध्यानान्युत्तरम् ॥20॥

अन्वयार्थ : प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान यह छह प्रकार का आभ्यन्तर तप है ॥२०॥

आभ्यन्तर तपों के उपभेद

नवचतुर्दश-पञ्च द्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥21॥

अन्वयार्थ : ध्यान से पूर्व के आभ्यन्तर तपों के अनुक्रम से नौ, चार, दश, पांच और दो भेद हैं ॥२१॥

प्रायश्चित्त के प्रकार

आलोचना-प्रतिक्रमण-तदुभय-विवेक-व्युत्सर्ग-तपश्छेदपरिहारो-पस्थापना: ॥22॥

अन्वयार्थ : आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, परिहार और उपस्थापना यह नव प्रकार का प्रायश्चित्त है ॥२२॥

विनय के प्रकार

ज्ञान-दर्शन-चारित्रोपचारा: ॥23॥

अन्वयार्थ : ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चारित्र विनय और उपचार विनय यह चार प्रकार का विनय है ॥२३॥

वैयावृत्य के प्रकार

आचार्योपाध्याय-तपस्वि-शैक्ष्य-ग्लान-गण-कुल-संघ-साधु-मनोज्ञानाम् ॥24॥

अन्वयार्थ : आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु और मनोज्ञ इनकी वैयावृत्य के भेद से वैयावृत्य दश प्रकार का है ॥२४॥

स्वाध्याय के प्रकार

वाचना-पृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय-धर्मोपदेशा: ॥25॥

अन्वयार्थ : वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश यह पाँच प्रकार का स्वाध्याय है ॥२५॥

व्युत्सर्ग के प्रकार

बाह्याभ्यन्तरोपध्यो: ॥26॥

अन्वयार्थ : बाह्य और अभ्यन्तर उपधि का त्याग यह दो प्रकार का व्युत्सर्ग है ॥२६॥

ध्यान के स्वामी और काल

उत्तम-संहननस्यैकाग्र-चिन्ता-निरोधो ध्यानमान्त-र्मुहूर्तात्॥27॥

अन्वयार्थ : उत्तम संहनन वाले का एक विषय में चित्तवृत्ति का रोकना ध्यान है जो अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है ॥२७॥

ध्यान के प्रकार

आर्त्त-रौद्र-धर्म्य-शुक्लानि ॥28॥

अन्वयार्थ : आर्त, रौद्र, धर्म्य और शुक्ल ये ध्यान के चार भेद हैं ॥२८॥

मोक्ष के हेतु ध्यान

परे मोक्षहेतू ॥29॥

अन्वयार्थ : उनमें से पर अर्थात् अन्त के दो ध्यान मोक्ष के हेतु हैं ॥२९॥

अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान

आर्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृति-समन्वाहार: ॥30॥

अन्वयार्थ : अमनोज्ञ पदार्थ के प्राप्त होने पर उसके वियोग के लिए चिन्तासातत्य का होना प्रथम आर्तध्यान है ॥३०॥

इष्ट वियोगज आर्तध्यान

विपरीतं मनोज्ञस्य ॥31॥

अन्वयार्थ : मनोज्ञ वस्तु के वियोग होने पर उसकी प्राप्ति की सतत चिन्ता करना दूसरा आर्तध्यान है ॥३१॥

पीड़ा चिंतन आर्तध्यान

वेदनायाश्च ॥32॥

अन्वयार्थ : वेदना के होने पर उसे दूर करने के लिए सतत चिन्ता करना तीसरा आर्तध्यान है ॥३२॥

निदान आर्तध्यान

निदानं च ॥33॥

अन्वयार्थ : निदान नाम का चौथा आर्तध्यान है ॥३३॥

आर्तध्यान के स्वामी

तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानां ॥34॥

अन्वयार्थ : यह आर्तध्यान अविरत, देशविरत और प्रमत्तसंयत जीवों के होता है ॥३४॥

रौद्रध्यान और उसके स्वामी

हिंसानृत-स्तेय-विषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरत-देशविरतयो: ॥35॥

अन्वयार्थ : हिंसा, असत्य, चोरी और विषयसंरक्षण के लिए सतत चिन्तन करना रौद्रध्यान है। वह अविरत और देशविरत के होता है ॥३५॥

धर्म-ध्यान

आज्ञापाय-विपाक-संस्थान-विचयाय धर्म्यम् ॥36॥

अन्वयार्थ : आज्ञा, अपाय, विपाक और संस्थान इनकी विचारणा के निमित्त मन को एकाग्र करना धर्म्यध्यान है ॥३६॥

प्रथम दो शुक्लध्यान के स्वामी

शुक्ले चाद्ये पूर्व-विद:॥37॥

अन्वयार्थ : आदि के दो शुक्लध्यान पूर्वविद् के होते हैं ॥३७॥

शेष दो शुक्लध्यान के स्वामी

परे केवलिन: ॥38॥

अन्वयार्थ : शेष के दो शुक्लध्यान केवली के होते हैं ॥३८॥

शुक्लध्यान के प्रकार

पृथक्त्वैकत्व-वितर्क-सूक्ष्मक्रिया-प्रतिपाति-व्युपरत-क्रियानिवर्तीनि ॥39॥

अन्वयार्थ : पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवर्ति ये चार शुक्लध्यान हैं ॥३९॥

शुक्ल-ध्यान का योग-आलंबन

त्र्येकयोग-काययोगायोगानाम् ॥40॥

अन्वयार्थ : वे चार ध्यान क्रम से तीन योगवाले, एक योगवाले, काययोगवाले और अयोग के होते हैं ॥४०॥

प्रथम दो शुक्ल-ध्यान की विशेषता

एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥41॥

अन्वयार्थ : पहले के दो ध्यान एक आश्रय वाले, सवितर्क और सवीचार होते हैं ॥४१॥

अपवाद

अवीचारं द्वितीयम् ॥42॥

अन्वयार्थ : दूसरा ध्यान अवीचार है ॥४२॥

वितर्क का लक्षण

वितर्क: श्रुतम् ॥43॥

अन्वयार्थ : वितर्क का अर्थ श्रुत है ॥४३॥

वीचार का लक्षण

वीचारोऽर्थव्यंजन-योगसंक्रान्ति: ॥44॥

अन्वयार्थ : अर्थ, व्यञ्जन और योग की संक्रान्ति वीचार है ॥४४॥

सम्यग्दृष्टियों में निर्जरा का क्रम

सम्यग्दृष्टि-श्रावक-विरता-नन्तवियोजक-दर्शनमोह-क्षपकोपशम-कोपशांत-मोहक्षपक-क्षीणमोह-जिना: क्रमशोऽसंख्येय-गुण-निर्जरा: ॥45॥

अन्वयार्थ : सम्यग्दृष्टि, श्रावक, विरत, अनन्तानुबन्धिवियोजक, दर्शनमोहक्षपक, उपशमक, उपशान्तमोह, क्षपक, क्षीणमोह और जिन ये क्रम से असंख्यगुण निर्जरावाले होते हैं ॥४५॥

निर्ग्रन्थ के भेद

पुलाक-वकुश-कुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातका निर्ग्रंथा: ॥46॥

अन्वयार्थ : पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ये पाँच निर्ग्रन्थ हैं ॥४६॥

पुलाक आदि मुनियों की विशेषता

संयम-श्रुत-प्रतिसेवना-तीर्थलिङ्ग-लेश्योपपाद-स्थान-विकल्पत: साध्या: ॥47॥

अन्वयार्थ : संयम, श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिंग, लेश्या, उपपाद और स्थान के भेद से इन निर्ग्रन्थों का व्याख्यान करना चाहिए ॥४७॥

केवलज्ञान की उत्पत्ति

मोहक्षयाज्ज्ञान-दर्शनावरणान्तराय-क्षयाच्च केवलम् ॥1॥

अन्वयार्थ : मोह का क्षय होने से तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान प्रकट होता है ॥१॥

मोक्ष का लक्षण और कारण

बन्धहेत्वभाव-निर्जराभ्यां कृत्स्न-कर्म-विप्रमोक्षो मोक्ष: ॥2॥

अन्वयार्थ : बन्ध-हेतुओं के अभाव और निर्जरा से सब कर्मों का आत्यन्तिक क्षय होना ही मोक्ष है ॥२॥

किन भावों के नाश से मोक्ष?

औपशमिकादि-भव्यत्वानां च ॥3॥

अन्वयार्थ : तथा औपशमिक आदि भावों और भव्यत्व भाव के अभाव होने से मोक्ष होता है ॥३॥

किन भावों का मोक्ष में सद्भाव है?

अन्यत्र केवलसम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शन-सिद्धत्वेभ्य: ॥4॥

अन्वयार्थ : पर केवल सम्यक्त्व, केवलज्ञान और सिद्धत्व भाव का अभाव नहीं होता ॥४॥

मुक्त जीव का निवास

तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्या-लोकान्तात् ॥5॥

अन्वयार्थ : तदनन्तर मुक्त जीव लोक के अन्त तक ऊपर जाता है ॥५॥

ऊर्ध्वगमन का कारण

पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्-बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥6॥

अन्वयार्थ : पूर्वप्रयोग से, संग का अभाव होने से, बन्धन के टूटने से और वैसा गमन करना स्वभाव होने से मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन करता है ॥६॥

प्रत्येक कारण का उदाहरण

आविद्धकुलालचक्रवद्-व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च ॥7॥

अन्वयार्थ : घुमाये गये कुम्हार के चक्र के समान, लेप से मुक्त हुई तूमड़ी के समान, एरण्ड के बीज के समान और अग्नि की शिखा के समान ॥७॥

मुक्त जीव लोकांत में क्यों ठहरते हैं?

धर्मास्तिकायाभावात् ॥8॥

अन्वयार्थ : धर्मास्तिकाय का अभाव होने से मुक्त जीव लोकान्त से और ऊपर नहीं जाता ॥८॥

मुक्त जीवों में भेद-व्यवहार

क्षेत्र-काल-गति-लिङ्ग-तीर्थचारित्र-प्रत्येकबुद्धबोधित-ज्ञानावगाहनान्तर-संख्याल्पबहुत्वत: साध्या: ॥9॥

अन्वयार्थ : क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येकबुद्ध, बोधितबुद्ध, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, संख्या और अल्पबहुत्व इन द्वारा सिद्ध जीव विभाग करने योग्य हैं ॥९॥